संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

हिन्दी

मूल्य : रु. ६/-
अंक : १७३
मई : ०७

परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

ब्रह्मलीन स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

धूलि-धूसरितं बीजं वृक्षरूपेण वर्धते । सरित्सागरतामेति गतगर्वस्तथोच्चताम् ॥

जैसे बीज मिटकर वृक्ष बन जाता है, सरिता स्वयं को मिटाकर सागर बन जाती है, उसी प्रकार मनुष्य भी निज अहं का त्याग करके परम उच्च परमात्म-पद को प्राप्त कर लेता है ।

पूज्य बापूजी के सत्संग-अमृतवचनों की ५ विडियो सी.डी.
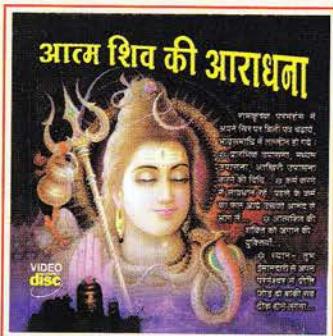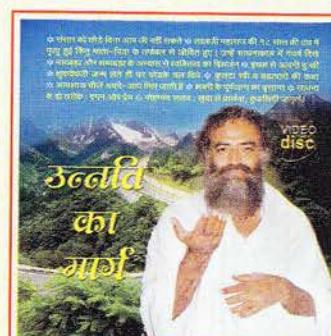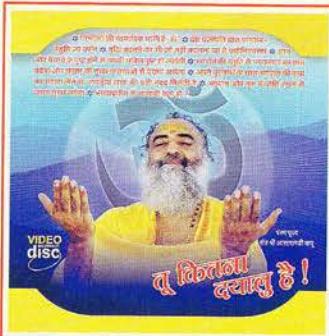
मनीऑर्डर, डी.डी. भेजकर रजिस्टर्ड पोस्ट पार्सल से भी प्राप्त कर सकते हैं।

५ सी.डी. का मूल्य रु. १७५/-
डाकखर्च सहित : मात्र रु. २१५/-

※ कैसेट विभाग ※
संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५
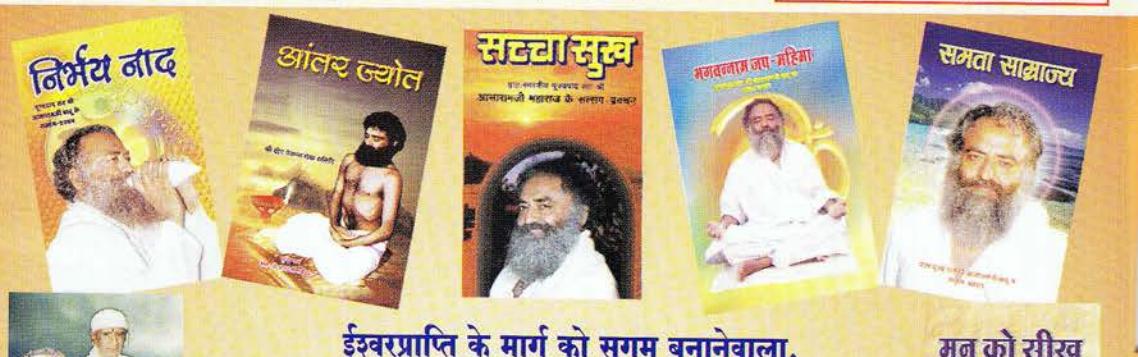
ईश्वरप्राप्ति के मार्ग को सुगम बनानेवाला,
सुखी-स्वस्थ और सम्मानित जीवन की कुंजियाँ बतानेवाला
पूज्यश्री का प्रेरणादायी सत्साहित्य अवश्य पढ़ें।

इन सभी पुस्तकों का मूल्य रु. ७३   डाकखर्च सहित रु. १००

वी.पी.पी. की सुविधा नहीं है। मनीऑर्डर भेजते समय अपनी माँग एवं अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड व फोन नं. अवश्य लिखें।
डी.डी., मनीऑर्डर भेजने का पता : साहित्य स्टॉल, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद।
सभी संत श्री आसारामजी आश्रमों व समितियों के सेवाकेन्द्रों पर भी उपलब्ध हैं। इससे आपका डाकखर्च बच जायेगा।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १७ अंक : १७३
मई २००७ मूल्य : रु. ६-००
वैशाख-अ. ज्येष्ठ, वि.सं.२०६४

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
e-mail : ashramindia@ashram.org
: ashramindia@gmail.com
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : दिव्य भास्कर, भास्कर हाउस, मकरबा, सरखेज-गाँधीनगर हाईवे, अहमदाबाद - ३८००५१.
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें । पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

हृदय की भाषा है 'मौन'

जितना पाप वाणी दूषित होने से होता है उतना और किसी प्रकार नहीं होता । शरीर और मन से भी वाणी के बराबर पाप नहीं बन सकता । अतः वाणी के दोष से सर्वदा बचना चाहिए । वाणी मनुष्य का बहुत बड़ा खजाना है । इसके दूषित होने से मन और वीर्य भी दूषित हो जाते हैं ।

वाणी का संयम होने पर ही ब्रह्मचर्य का पालन हो सकता है और इसीसे चित्त की एकाग्रता तथा मौन का भी पालन होता है। वाणी के संयम से तप की वृद्धि होती है और जिसका तप बढ़ जाता है उसे फिर विशेष सांसारिक प्रवृत्ति का झंझट नहीं रहता। तप के प्रभाव से स्वयं ही उसका सब काम होता रहता है । अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वाणी पर पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।

सत्पुरुषों की वाणी में चार गुण होते हैं : सत्य, परिमितता, मृदुता और सरसता । जब ये चार बातें वाणी में आ जाती हैं तो वह शुद्ध हो जाती है तथा कठोरता, निन्दा, चुगली और झूठ - ये जो वाणी के पाप हैं, नष्ट हो जाते हैं ।

बहुत बोलनेवाले से भजन होना बहुत कठिन है और सत्य बोलना भी बहुत कठिन है । अधिक भाषण करना मिथ्यावादी का चिह्न है। जैसे खुजलीवाले को हर घड़ी खुजली लगी रहती है, ऐसे बोलने का व्यसन मत डालो; मौन का अभ्यास करो। सात जगहों पर तो अवश्य मौन रहना चाहिए : भजन में, भोजन करते समय, शौच व लघुशंका करते समय, स्नान के समय, यज्ञ या हवन करते हुए और मार्ग में ।

वाणी की शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति में रूपान्तरित कर उसे ध्यान में लगाना चाहिए। तभी आप शम, शांति तथा आंतरिक आध्यात्मिक बल का अनुभव कर सकते हैं । ध्यान का प्रथम चरण है 'मौन'।

मानसिक शांति की कामना करनेवाले व्यक्ति को प्रायः कुछ समय तक एकान्त में मौन होकर बैठना चाहिए । हमारे महापुरुषों ने मौन को बहुत महत्त्व दिया है । मनःशांति के साथ शारीरिक स्वास्थ्य एवं सामर्थ्य की प्राप्ति के लिए भी मौन परम सहायक है।

एक घंटा लगातार बोलना चार घंटे शारीरिक श्रम के बराबर है क्योंकि जिन कार्यों में सर्वाधिक शक्ति क्षीण होती है उनमें से बोलना एक है ।

जिस प्रकार ब्रह्मचर्य के लिए इन्द्रिय-संयम की साधना का विधान है, उसी प्रकार आत्मबल संवर्धन के लिए वाणी का संयम सर्वश्रेष्ठ साधना है। मौन से आपमें तितिक्षा बढ़ेगी। आप झूठ नहीं बोल सकेंगे । वाणी के आवेगों पर नियंत्रण प्राप्त होकर आपको वाणी-विजय प्राप्त होगी । मौन से आपकी शक्ति की सुरक्षा तथा संकल्पबल की वृद्धि होगी। सत्य के अभ्यास में तथा क्रोध के दमन में मौन बहुत ही सहायक होगा ।

मौन का एक उद्देश्य अपने विचारों तथा उद्वेगों को तटस्थ होकर देखना है तथा आत्मनिरीक्षण द्वारा उन्हें समझकर सही दिशा देते हुए धीरे-धीरे निःसंकल्प आत्मविश्राम अवस्था की ओर बढ़ना है । महामौन की प्राप्ति में मौन सहायक है। महामौन में मन की सारी वृत्तियाँ विनष्ट होकर वह सच्चिदानन्द ब्रह्म में विश्राम करता है।

भारतीय मनीषियों ने मौन को हृदय की भाषा कहा है । रमण महर्षि मौन रहकर अपने आगन्तुकों की समस्याओं का समाधान कर देते थे । उन्होंने मौन पर सूक्ष्म विवेचन करते हुए कहा था :

वाणी और विचार इन दोनों से परे की जो स्थिति है वह 'मौन' है । वह एक प्रकार का मानसिक क्रियाविहीन ध्यान है । मन को वश में करना ही ध्यान है । गहरे ध्यान का मतलब निरन्तर वाणी है। मौन नित्य वाणी है । वही भाषा का बारहमासी प्रवाह है । बोलने से वह रुक जाता है। शब्द उस मूक भाषा को रोकते हैं । मौन शाश्वत सुधार का साधन होने से सारे मानव-समाज का कल्याणकर्ता है । मौन का अर्थ ही वाक्पटुता है । मौखिक व्याख्यान में मौन के जितनी वाक्पटुता नहीं होती । मौन निरंतर वाणी है । वह सर्वोत्तम भाषा है । मौन अनन्य उपदेश है । मौन से सत्य व्यक्त होता है । आत्मिक शक्ति का प्रवाह प्रसार कर मौन का सेवन कर बैठे रहना श्रेष्ठ है ।

शुद्ध चैतन्य से अहंता उत्पन्न होती है । वह अहंता विचार को जगाती है और विचार शब्द को जन्म देते हैं । इस तरह वाणी मूलस्रोत की परपौत्री है । यदि वाणी अपना कुछ प्रभाव डाल सकती है तो जरा सोचो कि मौन द्वारा किया उपदेश कितना अधिक शक्तिमान हो सकता है ! इस सरल, शुद्ध सत्य को, अपने नित्य, शाश्वत अनुभव के सदा विद्यमान सत्य को लोग समझते नहीं हैं ।

योगी अरविन्द कहते हैं कि 'आध्यात्मिक जीवन में सबसे बड़ी बाधा वाचालता है । मौन की अवस्था में आप आत्मा की वाणी सुन सकते हैं । वाणी से आत्मा को नहीं जाना जा सकता है क्योंकि मौन ही आत्मा की भाषा है ।'

मौन प्रकृति का शाश्वत नियम है। चाँद, सूरज बिना बोले चलते हैं । तारे मौन-शांत रहकर टिमटिमाते हैं। धरती चुप्पी साधकर घूमती रहती है। बीज शांत पड़े रहकर पोषण प्राप्त करते हुए अंकुरित होते हैं। फूल मूक रहकर ही अपने मनोहर रंगों व सुवास द्वारा हमें आह्लादित करते हैं।

आप समय निकालकर कम-से-कम सात दिन एकान्त में मौन-व्रत का पालन करके देखिये। यदि आप मौन रहकर पवित्र स्थान में चालीस दिन का अनुष्ठान करें तो आपको अद्भुत शांति तथा आध्यात्मिक उन्नति का अनुभव होगा । पूज्य बापूजी कहते हैं : ''मैंने ४० दिन मौन में जो पाया, उसको बाँटते-बाँटते चालीस साल हो गये, अभी तक खुटा नहीं ।''

कामकाजी लोगों को भी प्रतिदिन कम-से-कम एक घंटा मौन व्रत रखना चाहिए। मौन के लाभ अनिर्वचनीय हैं । हे पुण्यात्मन् ! आप इसका अभ्यास कीजिये, भीतरी गहन शांति का अनुभव कीजिये तथा मनुष्य-जीवन के परम फल आत्मसुख का उपभोग कीजिये ।

पिता भरण-पोषण और अध्यापन करने के कारण पुत्र का प्रधान गुरु है । वह जो कुछ भी आज्ञा दे, उसे धर्म समझकर स्वीकार करना चाहिए । यही वेद की भी निश्चित आज्ञा है । पुत्र पिता के स्नेह का पात्र है किंतु पिता पुत्र का सर्वस्व है । एकमात्र पिता ही पुत्र को शरीर आदि सब कुछ देता है, इसलिए कोई सोच-विचार किये बिना ही पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए । जो पुत्र पिता की आज्ञा मानता है, उसके समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं । गर्भाधान और सीमन्तोन्नयन संस्कार के द्वारा पिता ही पुत्र को उत्पन्न करता है । वही अन्न-वस्त्र देता, पढ़ाता-लिखाता और समस्त लोक-व्यवहारों का ज्ञान कराता है । पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है और पिता ही सबसे बड़ा तप है । पिता के प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। पिता जो कुछ भी कहता है, वह पुत्र के लिए आशीर्वाद है । यदि पिता प्रसन्न होकर पुत्र का अभिनन्दन करे तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । वृक्ष अपने फूल और फलों को छोड़ देते हैं किंतु पिता बड़े-से-बड़े संकट में भी स्नेह के कारण पुत्र को नहीं छोड़ता । अतः पुत्र के लिए पिता का स्थान बहुत ऊँचा है । [महाभारत]

(भगवान के रास्ते जाने से अगर पिता रोकता है तो भले उनकी अवज्ञा हो, अन्यथा नहीं ।)

जीवन में ईश्वर की माँग क्यों ?

- पूज्य बापूजी

मनुष्य-जीवन में ईश्वर की माँग क्यों है ? ईश्वर के बिना नहीं चलेगा क्या ? काहे को 'ध्यान योग शिविर' भरना ? काहे को मंत्रदीक्षा लेना ? काहे को भगवान को मानना ? ईश्वर की माँग क्यों ?

मनुष्य-जीवन में बुद्धि की विशेषता है। मनुष्य दूर का सोच सकता है कि भाई ! यह शरीर मर जायेगा । पशु तो नहीं समझता कि मैं मर जाऊँगा। मनुष्य समझता है कि शरीर मरणधर्मा है । इसके साथ संयोग की दासता और वियोग का भय जुड़ा हुआ है। तुम दासता और भय नहीं चाहते। ऐसा कौन मनुष्य है जो गुलामी और भय चाहे ? कोई नहीं चाहेगा।

जब तक वियोगवाली वस्तु और संयोगवाले के सुख से तुम सुखी होना चाहोगे, तब तक वियोग का भय और संयोग की दासता बनी रहेगी क्योंकि तुम हो नित्य और वस्तु एवं संयोग हैं अनित्य ।

भूख लगी पर भूख भी अनित्य है। भूख लगी और खा लिया, तृप्ति हो गयी । फिर सदा के लिए तृप्त नहीं रहते। थोड़ी देर के बाद - छः घंटे, आठ घंटे के बाद अतृप्त हो जाते हैं। तो तुम हो नित्य और संयोग से जो सुख मिलता है वह है अनित्य। सुख की दासता तथा दुःख के भय में सारी जिंदगी खप जाती है और आखिर मनुष्य दुःखी होकर मरता है!

बेटी का क्या होगा, बेटे का क्या होगा, दुकान का क्या होगा, फलाने का क्या होगा, फलानी का क्या होगा ? - ऐसा सोचते रहनेवाले दुःखी होकर मर जाते हैं। फिर कहाँ जायेंगे, कौन-सी योनि में भटकेंगे कोई पता नहीं। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति ऐसी लाचारी की स्थिति नहीं चाहता है । जैसे घर से निकलने से पहले ही बुद्धिमान व्यक्ति यह सोच लेता है कि कहाँ जायेंगे, कहाँ खायेंगे, कहाँ रहेंगे आदि, ऐसे ही जीवन की शाम होने से पहले वह सोच लेता है कि मर जायेंगे तो हमारा क्या होगा ?

इस प्रकार की अगर थोड़ी भी अक्ल है और दासता नहीं चाहता, सदा सुख चाहता है तो ईश्वर की माँग हो जायेगी। ईश्वर की माँग के बिना मनुष्य रह नहीं सकता क्योंकि मनुष्य की माँग है कि दुःख न आये और सुख न मिटे । जहाँ दुःख नहीं है, पराधीनता नहीं है उसकी माँग का नाम है ईश्वर की माँग। इसलिए ईश्वर की आवश्यकता है ।

जिनको भूतकाल का थोड़ा सुमिरन है कि ऐसा-ऐसा बीत गया, रहा नहीं। बचपन बीत गया, बचपन की खुशियाँ बीत गयीं, जवानी हमारे हाथ में नहीं रही, यह शरीर भी हमारे हाथ में नहीं रहेगा- ऐसी जिनको थोड़ी भी समझ है उनको ईश्वर की माँग होगी ।

शरीर तुम्हारे हाथ में रहेगा क्या ? रखना चाहोगे तो भी नहीं रहेगा, मर जायेगा। जब शरीर मर जायेगा तो शरीर से संबंधित जो वस्तुएँ हैं क्या वे साथ में चलेंगी ? फिर छूटनेवाले शरीर और वस्तुओं में कब तक खपोगे ?

ऐ दरिद्र धनवान ! तू अपने एक-एक नाखून का बीमा करा दे, पालिसियों पर पालिसियाँ ले ले, तेरा एक बाल टूट जाय तो दस लाख मिलियन तुझे मिलें ऐसी पालिसियाँ ले ले । फिर भी तू सुरक्षित, निर्भीक नहीं हो सकता। **इस असुरक्षित शरीर को कितना सुरक्षित करोगे ? और जो सदा सुरक्षित है उससे विमुख कब तक रहोगे ?** जो सदा सुरक्षित है वह तुम हो तथा जो असुरक्षित है

वह शरीर है और भगवान की कसम तुम शरीर नहीं हो ! तुम्हारी कसम तुम शरीर नहीं हो !! अगर तुम शरीर होते तो मरने के बाद यह तुम्हारे साथ में चलता । तुम बचपन, जवानी, सब परिस्थितियों से न्यारे, अपने-आपके प्यारे साक्षी हो ।

'यह' और 'वह' दोनों चीजें तब मालूम पड़ती हैं जब 'मैं' होवे । 'मैं' न हो तो 'यह' और 'वह' किसको मालूम पड़े ? जिनकी 'मैं' को यह और वह दोनों मालूम पड़ते हैं, उनमें 'मैं' की सत्ता ज्यादा बड़ी है और यह-वह की सत्ता छोटी है । यह-यह-यह हजारों आते-जाते रहते हैं और वह-वह-वह हजारों कल्पनाएँ होती रहती हैं लेकिन चाहे 'यह' की कोई भी कल्पना हो, चाहे 'वह' की कोई भी कल्पना हो, उसमें 'मैं' जरूर रहेगा क्योंकि कल्पना का जो आधार है, कल्पना का जो अधिष्ठान है वह 'मैं' है ।

यदि परमात्मा को ढूँढ़ना है तो 'यह' हमारे सामने मर जाता है, उसमें क्या ढूँढ़ोगे ? और 'वह' की कल्पना का हमारे सामने लोप हो जाता है, उसमें परमात्मा को क्या ढूँढ़ोगे ? परमात्मा को ढूँढ़ना है तो कल्पित 'यह' में मत ढूँढ़ो, कल्पित 'वह' में मत ढूँढ़ो, जिसमें कल्पना का उदय होता है उस 'मैं' में परमात्मा को ढूँढ़ो । वह शाश्वत सत्य अकाल परमात्मा, अदेश परमात्मा, अद्रव्य परमात्मा, अनन्य परमात्मा अपने 'मैं' के भीतर मिलेगा । 'मैं' की जब पोलपट्टी निकालोगे कि आखिर तुम 'मैं' किसको बोलते हो- देह को 'मैं' बोलते हो, प्राण को 'मैं' बोलते हो, मन को 'मैं' बोलते हो, बुद्धि को 'मैं' बोलते हो, तब इन सबके साक्षी को 'मैं' के रूप में जानोगे । **येन वागभ्युद्यते** (केनोपषिद् : १.४)- जिसके होने से वाणी किसी अर्थ विशेष का वर्णन करने के लिए प्रवृत्त होती है, वही तुम्हारा 'मैं' है ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, चिंता - यह सूक्ष्म शरीर में कचरा है और हाड़, मांस, रक्त - यह सब स्थूल शरीर में कचरा है । इन दोनों तरह के कचरों को, मसालों को चला-चलाकर तुम सुख लेने के लिए दौड़ रहे हो क्योंकि तुम सुखस्वरूप ईश्वर की संतान हो । सुखस्वरूप ईश्वर से तुम्हारी उत्पत्ति है । जैसे - तरंग भागती फिरेगी तो कहाँ जायेगी ? बिना पानी के तरंग नहीं रह सकती, ऐसे ही बिना ईश्वर के तुम रह ही नहीं सकते हो । भले गलती से तरंग पानी को खोजने के लिए दौड़ती है, फिर नष्ट हो जाती है, फिर दौड़ती है फिर नष्ट हो जाती है । उसे पता चले कि पानी बाहर नहीं, जहाँ से तू दौड़ रही है वही तेरा आत्मदेव (पानी) है । जरा शांत हो जा, तरंग ! जरा शांत हो जा... तो दिखेगा, गहराई में जो है वह और मैं एक हूँ ।

जो वियोग के थप्पड़ खाता है वह संसारी है । जो सदा हाजिर है, जो दिल के झुरमुट में से देखता है वह मेरा परमात्मा है । मैं उसका और वह मेरा ! असली सुख शुरू कर लो और नकली सुख से अपना पल्ला थोड़ा खींच लो । नकली सुखों से अपनेको ऊपर उठाओ और असली सुख पाने में तत्पर हो जाओ । असली ज्ञान पाने में तत्पर हो जाओ । नकली ज्ञान को नकली समझो । आकाश के तरफ एकटक देखो । ॐ... ॐ... ॐ... गुंजन करो । फिर शांत, पुनः गुंजन, फिर शांत और आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'ईश्वर की ओर' थोड़ा-थोड़ा पढ़ो । आ जाओ अपने ईश्वरत्व में, देर न करो ।

'मैं फलाना हूँ' - यह नकली है । यह शरीर भी असली नहीं है । इसको नहलाओ, धुलाओ, खिलाओ, पिलाओ पर इसे लाड़ मत लड़ाओ । क्रीम लगाकर, लाली-लिपस्टिक लगाकर इसके गुलाम मत बनो । शरीर को स्वस्थ रख लो और बुद्धि को स्वस्थ रख के बुद्धिदाता को पा लो, बस ।

तुम कहाँ हो ? तुम्हारी रुचि कहाँ है ?

तुम कहीं भी रहते हो, मानो मंदिर में रहते हो किंतु तुम्हारी रुचि लड्डू में है तो तुम हलवाई के पास हो । तुम मस्जिद में हो और रुचि दूसरे की जेब पर है तो फिर तुम मस्जिद में नहीं हो । तुम्हारी

रुचि हो जाय सच्चा सुख लेने की, सच्ची माँग जम जाय केवल। भीतर से सच्ची माँग तो थोड़ी-सी है ही, उसको बढ़ावा दो।

सच्ची माँग को बढ़ावा कैसे मिले ? विवेक से।

वह कैसे मिलेगा ?

बिनु सतसंग बिबेक न होई ।

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता।

सत्संग कैसे मिलता है ? जब भगवान की कृपा होती है।

राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

भगवान की कृपा तो हो गयी, भगवान का काम तो पूरा हो गया कि उन्होंने तुमको सत्संग तक पहुँचा दिया। अब भगवान और क्या करेंगे ?

अब तुम अपने पर कृपा कर लो और भगवान की बात मान लो। दुनियादारों की, इसकी-उसकी, सभीकी बात मान लो तब भी दुःखों का अंत नहीं होगा और सुख टिकेगा नहीं किंतु भगवान की बात मान लो तो सुख मिटेगा नहीं और दुःख टिकेगा नहीं, बिल्कुल पक्की बात है। वियोग का भय नहीं होगा, संयोग की दासता नहीं रहेगी। वियोग उसीका होता है जो तुम नहीं हो। उसीके संयोग की दासता होती है जो तुम नहीं हो। भगवान कहते हैं कि तुम अपने-आपको जान लो।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

(गीता : १५.७)

बेटे ! तुम सनातन हो, अमर हो, सुखस्वरूप हो, आनंदस्वरूप हो । यह जान लो । बोले : फिर क्या यह संसार नहीं चलेगा ? अरे नहीं, बिल्कुल बढ़िया चलेगा, अच्छा चलेगा।

संसार का सुख आया तो क्या भोगें नहीं ? नहीं भोगो। जो आदमी संसार के सुख का भोगी बनता है, वह गहरा दुःखी होगा । सुख आता है औरों को बाँटने के लिए और दुःख आता है सुख का लालच छुड़ाने के लिए। दुःख का भय और सुख का लालच दोनों तुम्हारी महिमा का गला घोंट रहे हैं, तुम्हारी असलियत को दबा रहे हैं। ये दोनों विचार तुमको घाटे में डाल रहे हैं। तुम घुट-घुट के परेशान हो रहे हो, घुट-घुट के मर रहे हो ।

हे ईश्वर के अमर पुत्र ! हे शाश्वत ! लाखों बार मौत होने के बाद भी तुम्हारा बाल बाँका नहीं हुआ। लाखों सुख-दुःख आये फिर भी तुम वही-के-वही रहे। फिर भी डरते रहते हो कि क्या पता निंदा न हो जाय, क्या पता यह न चला जाय, वह न चला जाय। मिटनेवाली चीजों का थप्पा (ढेर) लगाकर उसको प्रगति मानते हो। उसकी चिंता-चिंता में प्रेत होकर भटकना यह प्रगति है कि पतन है ? राजा नृग की कैसी प्रगति थी ! उससे अधिक तुम्हारी प्रगति नहीं हो सकती। आखिर गिरगिट होकर भटकना पड़ा उसे। हिरण्यकशिपु का हिरण्यपुर नगर सोने का था। लंकापति रावण की लंका सोने की थी। कितनी प्रगति थी ! सोने के नगरवाले भी अंत में दुःखी होकर चले गये तो तुम्हारे को इन चीजों से कब तक सुख मिलेगा ? अरे ! जहाँ सच्चा सुख है वहाँ गोता मार, अभी हो जा निहाल !

जिन्होंने सद्गुरु की कृपा प्रसादी पायी, आत्मज्ञान पाया वे सचमुच में धन्य हो गये ।

पूरे हैं वे मर्द जो हर हाल में खुश हैं ।
मिला अगर माल तो उस माल में खुश हैं।
हो गये बेहाल तो उस हाल में खुश हैं ।

यह तो पहले भी नहीं था, बाद में भी नहीं रहेगा तो अभी काहे को डरना ? ये जो चीजें हैं तुम्हारे साथ, पहले थीं नहीं और मृत्यु का झटका लगेगा उसके बाद में रहेंगी नहीं तो इनके लिए भयभीत काहे को होना ? जो पहले था, अभी है और बाद में रहेगा उस परमेश्वर स्वभाव को जान लेना यह मनुष्य की माँग है। अपनी माँग पूरी करने में जितनी देर करेगा उतनी मार खायेगा, प्रकृति के डंडे खायेगा और जितनी जल्दी पूरी करेगा उतनी जल्दी निर्दुःख हो जायेगा, परम सुखी हो जायेगा।

पाँच चीजें बड़ी दुर्लभ

- पूज्य बापूजी

पाँच चीजें बड़ी दुर्लभ हैं :

(१) **दान देने की शक्ति** : पैसा आना कोई बड़ी बात नहीं है लेकिन देने की शक्ति होनी चाहिए। कंजूस ब्याज-पे-ब्याज ले-ले के, सँभाल-सँभाल के और अंत में छोड़ के मर जाता है। भगवान की कृपा हो तब देने की शक्ति आती है।

(२) **प्रिय बोलने की शक्ति** : यह बड़ी दुर्लभ चीज है। जो किसीसे भी मीठी बात नहीं करता, वह अशांत व्यक्ति सभीके द्वेष का पात्र बनकर रह जाता है। लोगों से मिलते समय जो स्वयं ही बात आरंभ करता है और सबके साथ प्रसन्नता से बोलता है, उस पर सब प्रसन्न रहते हैं। जो मधुर वचन बोलता है, दूसरों को मान देता है उसका आंतरिक आनंद बढ़ जाता है। 'अं... अँ... हूँ... हूँह...' करके जो दूसरों को नीचा दिखाता है, उसने जीना सीखा ही नहीं। अहं भरी मानसिकता, शुष्कता व अहंकारवाली वाणी नहीं, प्रेम-नम्रता, निःस्वार्थता और सारगर्भित वाणी हो। आप अमानी रहें, दूसरों को मान दें।

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय॥

यदि सुंदर रीति से, सांत्वनापूर्ण, मधुर एवं स्नेह संयुक्त वचन सदैव बोले जायें तो इसके जैसा वशीकरण का साधन संसार में और कोई नहीं है। परंतु यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि अपने द्वारा किसीका शोषण न हो। मधुर वाणी उसीकी सार्थक है जो प्राणिमात्र का हितचिंतक है।

(३) **सहनशक्ति** : सास ने कुछ कह दिया, बहू ने, भाई ने, बेटे ने कुछ कह दिया या दुश्मन ने कुछ सुना दिया तो उद्विग्न न हों, धैर्य रखें। फिर उसको समझायें कि 'यह ऐसा नहीं, ऐसा है।' ऐसा करनेवाला आदमी बड़ा प्रभावशाली हो जायेगा।

भगवान ने इस प्रकार के कष्टसहन को दैवी सम्पदा के लक्षणों में से एक 'तप' की संज्ञा दी है :

स्वाध्यायस्तप आर्जवम्। (गीता : १६.१)

सहने की शक्ति हो इसका मतलब यह नहीं है कि ईश्वर का रास्ता छोड़कर संसार के चक्कर में आ गये, नहीं।

(४) **निरपेक्षता** : किसीसे हमें कुछ चाहिए नहीं। जितनी निरपेक्षता आयेगी उतना मनुष्य ब्रह्मत्व में जल्दी जग जायेगा। अपेक्षा ही ब्रह्म-परमात्मा से दूर रखती है।

(५) **पाप से अपनेको बचाना** : चुगली, निंदा और अशुद्ध आहार से अर्थात् पापजनक आहार व पापजनक व्यवहार से अपनेको बचाना। वास्तव में जीव खुद निष्पाप है। वास्तव में आप ब्रह्म-परमात्मा के अविभाज्य अंग हैं, शुद्ध हैं किंतु अशुद्ध वासनाओं से मिलकर अशुद्ध हो जाते हैं, अशुद्ध कर्मों से मिलकर अशुद्ध हो जाते हैं। इसलिए :

जानिअ तबहिं जीव जग जागा।
जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

परमात्मा के पद में रुचि हो। और यह रुचि कैसे हो ? बार-बार उसका नाम लो, उसका गुणगान करो, उसको प्रीति करो।

यदि आपमें ये पाँच सद्गुण आ गये तो ब्रह्मत्व में प्रतिष्ठित करने में रत महापुरुष हँसते-खेलते आपको ब्रह्मसुख में, ईश्वरीय सुख में ले जा सकते हैं।

*

शुद्ध हृदय कल्पतरु है

- पूज्य बापूजी

श्री वसिष्ठजी महाराज बोले : ''हे रामजी ! शुद्ध हृदय से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।''

मनुष्य का हृदय कल्पतरु है। उससे क्या नहीं मिल सकता है ? सब कुछ मिल सकता है। केवल राग-द्वेष और कपट के जो साँप उस वृक्ष से चिपके हैं उन साँपों को हटा दो बस । फिर तो आप जो चाहोगे वह हो जायेगा । आपके संकल्प से कइयों का कल्याण हो जायेगा। फिर दुःख आपको कभी छू नहीं सकता। अभी जो दुःख होता है वह राग-द्वेष और कपट का फल है। नहीं तो दुःख नहीं हो सकता।

एक महात्मा हैं, अभी जीवित हैं । उनको किसीने कहा : ''महाराज ! आपने फलाने को डाँटा लेकिन उसकी गलती नहीं है। वह तो ऐसा-ऐसा बोलता है।''

महात्मा बोले : ''वह जो बोलता है, सफाई मारता है । वह अगर सही होता, निर्दोष होता तो हमारे हृदय से उसके लिए डाँट निकलती ही नहीं।''

''महाराज ! आपने तो फलाने को रसगुल्ले दे दिये !''

''वह दोषी होता तो हमारे हाथ से उसको रसगुल्ले मिलते ही नहीं, उसको डाँट मिलती। उसे रसगुल्ले देने का स्फुरणा ही नहीं होता।''

''फलाने की तो आपने पदोन्नति करा दी, उसे आशीर्वाद दे दिया।''

''हाँ, अगर वह इतना बुरा होता तो उसके लिए आशीर्वाद निकलता ही नहीं।''

महात्माओं को अपने हृदय पर कितना भरोसा होता है ! ऐसे ही एक दूसरे महात्मा हैं। अभी अस्सी साल के होंगे। उनको किसीने बताया : ''महाराज ! यह ऐसा नहीं ऐसा है।''

महाराज बोले : ''नहीं।''

''महाराज ! सब बोलते हैं।''

''बोलते हैं तो बोलें पर हमारे अंतरात्मा में जो आया है वह सही है।'' और वास्तव में वही सही निकलता है।

यह है राग-द्वेष रहित चित्त ! ऐसों को बोलते हैं आर्षद्रष्टा ! जो मनन करें उन्हें मुनि बोलते हैं और जो द्रष्टाभाव से जगत को देखें, उन्हें ऋषि बोलते हैं। **ऋषयः तु मन्त्रद्रष्टारः न कर्तारः।** 'ऋषि मंत्र के द्रष्टा हैं, कर्ता नहीं।'

क्या हो गया, क्या हो रहा है, क्या होनेवाला है ?- उसको वे जान लेते हैं, जिनकी सूक्ष्म और कारण शरीर में गति है।

एक बार जमशेदजी टाटा और स्वामी विवेकानंदजी एक ही जहाज से यूरोप जा रहे थे । टाटा ने उनसे पूछा : ''हमें लोहे का कारखाना लगाना है। कहाँ लगाना ठीक होगा ? कारखाने के लिए जलवायु, लोहे के कण - यह सारी-की-सारी सामग्री हिन्दुस्तान में कौन-सी जगह पर हमें विपुल मात्रा में मिलेगी ?''

अब लगाना तो कारखाना है और पूछ रहे हैं संत से ! जिनका सूक्ष्म और कारण शरीर में प्रवेश हो गया है, वे प्रकृति के, सृष्टि के रहस्य आराम से जान सकते हैं। विवेकानंदजी ध्यानस्थ हो गये और बताया कि ''बिहार में अमुक नदी के किनारे तुम्हारा

कारखाना अच्छा चलेगा। वहाँ भूगर्भ में विपुल मात्रा में लौह है तथा अन्य सामग्री भी विपुल है।''

जहाज में बैठे-बैठे विवेकानंदजी ने बताया व जमशेदजी टाटा ने जमशेदपुर बनाया और उनका उद्योग-समूह विश्वविख्यात हो गया। तो शुद्ध हृदय से, कपटरहित हृदय से महापुरुष सब कुछ जान लेते हैं।

इसलिए राग-द्वेष रूपी, कपटरूपी सर्पों से अपने हृदय को बचाओ। जैसे खीर बढ़िया हो किंतु उसे साँप ने छू लिया है, साँप का मुँह लगा है तो आपके लिए वह खीर बढ़िया नहीं है। मिठाई है परंतु कुत्ते ने खा ली है, जूठी कर दी है तो आपके लिए खाने योग्य, सुखदायी नहीं है। ऐसे ही आपका हृदय है तो ईश्वर का घर लेकिन कपट ने, राग-द्वेष ने उसमें डेरा जमाया है तो वह हृदय आपको सुख देनेवाला नहीं है, मुसीबत देनेवाला है।

श्री वसिष्ठजी बोले : ''हे रामजी ! जो बुद्धिमान है और शास्त्र का ज्ञाता भी है परंतु राग-द्वेष संयुक्त है, वह सियार की तरह नीच है।''

काम क्रोध अरु लोभ मोह की, जब लग मन में खान।
तुलसी दोनों एक हैं, क्या मूरख अरु विद्वान ॥

ये विकार मन में हैं तो मूर्ख और विद्वान में क्या फर्क ? इसलिए हृदय को स्वच्छ करना चाहिए।

''हे रामजी ! क्रिया करो परंतु राग-द्वेष से रहित हो।''

व्यक्ति राग-द्वेष से क्रिया या निर्णय करेगा तो पक्षपात करेगा, शुद्ध हृदय का निर्णय नहीं आयेगा जिससे कर्मबंधन बनेगा। वास्तव में अपनेवालों से न्याय, दूसरों से उदारता यह जीवन का सिद्धांत होना चाहिए। अपनेवाले चाहते हैं कि सब हमारे पक्ष में हो। हमारा पक्ष, तुम्हारा पक्ष - संत ऐसा नहीं करते। उनका अंतरात्मा जो बोलता है, उसीमें आपका भला है। वे तटस्थ होकर जो बोलते हैं, उसीमें आपका भला है। पक्षपात करने में तो पक्षपात करनेवाले का भी भला नहीं और जिसकी तरफ पक्षपात होता है उसका भी भला नहीं। ईश्वर के नाते न्याय से ही सबका भला होता है। आजकल देश में, विश्व में अशांति क्यों है ? क्योंकि सारे निर्णय राग और द्वेष से ही होते हैं : 'यह अपनेवाला है और यह पराया है...' पराया भले ही अच्छा हो और अपनेवाला भले ही बुरा हो लेकिन मदद अपनेवाले की ही करते हैं। 'अपना... अपना...' इस पक्षपात और राग-द्वेष ने तो विश्व का सत्यानाश किया है।

श्री वसिष्ठजी बोले : ''हे रामजी ! जैसे दग्ध वन में हरिण प्रवेश नहीं करते, वैसे ही राग-द्वेष युक्त हृदय में संतोष आदि कभी प्रवेश नहीं करते।''

जिसके हृदय में राग-द्वेष... राग-द्वेष में सब कुछ आ जाता है- झूठ-कपट, बेईमानी- सब दुर्गुण आ जाते हैं। जिसके हृदय में राग-द्वेष घर कर बैठा है, उसके हृदय में संतोष नहीं होता, चाहे कितनी भी वाहवाही मिले, कितना भी ऊँचा पद मिले। राग-द्वेष की गंदगी के बिना आदमी असंतुष्ट हो ही नहीं सकता, अशांत हो ही नहीं सकता, दुःखी हो ही नहीं सकता। दुःखी होने के लिए राग-द्वेष चाहिए। जितना राग-द्वेष ज्यादा, व्यक्ति उतना दुःखी ज्यादा। जितनी संसार की इच्छा ज्यादा, उतना तनाव ज्यादा। कोई धन से भले बड़ा हो जाय, कोई सत्ता से भले बड़ा हो जाय, कोई झूठ-कपट, चतुराई से भले बड़ा हो जाय किंतु रहेगा अंदर से कंगाल। उसको खुशी नहीं होगी, उसको अलमस्तता, आनंद नहीं प्राप्त होगा। पर जो राग-द्वेष रहित हो जाय, वह शबरी भीलन की नाईं हो चाहे शुकदेवजी महाराज की नाईं हो लेकिन वह स्वतंत्र है, राजा है, सुखी है, प्रसन्न है, सम्राटों-का-सम्राट है। सम्राट परीक्षित शुकदेवजी के चरणों में माथा टेकते हैं और भगवान राम शबरी भीलन के यहाँ अपने-आप जाते हैं क्योंकि शुकदेवजी तथा

शबरी के हृदय में राग-द्वेष नहीं है, प्रेम-ही-प्रेम है, आनंद-ही-आनंद है।

''हे रामजी ! राग-द्वेष तब होता है जब मन में इच्छा होती है और इच्छा तब होती है जब संसार की सत्यता मन में दृढ़ हो जाती है।''

क्या बात है ! संसार सत्य नहीं है। इसका कुछ भी टिकता नहीं है, बदलता रहता है। जो बदलनेवाले, मिथ्या संसार को सत्य मानते हैं उनको संसार के भोगों की इच्छा होती है। भोगों की इच्छा होती है तब राग-द्वेष उभरता है। संसार को जितना सत्य मानते हैं उतनी इच्छा ज्यादा, जितनी इच्छा ज्यादा उतना राग-द्वेष ज्यादा। जितना राग-द्वेष ज्यादा उतना ही हृदय ठनठनपाल !

'ऐसा क्यों हुआ, वैसा क्यों हुआ ?' - जगत सत्य लगता है इसलिए दिमाग चकराता है। भगवान सत्य लगें और जगत मिथ्या लगे तो संसार की इच्छा छूटती जायेगी। इससे राग-द्वेष छूटता जायेगा। राग-द्वेष छूटने से परमात्मा मिलेंगे।

संसार की इच्छाएँ राग-द्वेष पैदा करती हैं। तो बोले : 'संसार की इच्छा नहीं करें ? खायें-पीयें नहीं ?'

खाओ-पीयो लेकिन भगवान में प्रीति करो। इससे इच्छाएँ-वासनाएँ विकसित नहीं होंगी, आवश्यकताएँ पूरी हो जायेंगी; राग-द्वेष नहीं होगा और आराम से परमात्मा को भी पा लोगे।

पहले के जमाने में गुरु से उपदेश सुन के उस उपदेश को पकड़ लेते थे। बार-बार उस उपदेश को याद करके अपने मन को राग-द्वेष और कपट से बचाते थे। अभी तो उपदेश सुना और हा-हा... ही-ही... हू-हू... करके बिखेर दिया, इसीलिए जितना ऊँचा सत्संग मिलता है उतनी ऊँचाई पर टिक नहीं पाते। नहीं तो यूँ पकड़ ले तो पहुँच जाय। हमारे गुरुजी के पास भी जिन्होंने उपदेश को पकड़ा और उसमें लग गये वे पहुँच गये।

गुरुजी जो कहते हैं वह हितकर है। उनके शुद्ध हृदय से जो बात आती है, वह हमको नहीं जँचती या नहीं मानते हैं तो यह हमारा दुर्भाग्य है किंतु बात आती तो कल्याण के लिए है। जो सीधा अर्थ लेते हैं उनकी तो सीधी यात्रा हो जाती है परंतु जो टेढ़ा अर्थ लेते हैं उन्हें टेढ़ी चाल चलनेवाले साँप की योनि में जाना पड़ता है। जो मनुष्य-जीवन में खूब कपट करता है और टेढ़ी-मेढ़ी चाल चलता है, उसको फिर टेढ़ी-मेढ़ी चालवाला साँप होने के लिए तैयारी करनी पड़ेगी।

श्री वसिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! बालक की नाई हमारे वचन नहीं हैं। हमारा कहना यथार्थ है क्योंकि हमको स्वरूप का स्पष्ट भान है।''

हमारे वचन बालक जैसे नहीं हैं कि भाई सुना, 'हाँ-हूँ' कर लिया। नहीं, ब्रह्मज्ञानी के वचन बड़े कीमती होते हैं क्योंकि उनको स्वरूप का, आत्मा का स्पष्ट भान होता है। जिनको आत्मा का ज्ञान होता है, उनके वचन सही होते हैं, सच्चे होते हैं। आपको नहीं समझ में आते हैं तो आपकी मति कच्ची है।

''हे रामजी ! ज्ञान तभी होगा जब संतों का संग और विचार, विषयों से वैराग्य तथा स्वरूप का अभ्यास करे।'' तभी सब दुःख सदा के लिए मिटेंगे।

पूज्यश्री के आगामी सत्संग-कार्यक्रम

हरिद्वार (उत्तरांचल) में 30 अप्रैल से 2 मई

(पूर्णिमा : 2 मई)

सत्संग स्थल : पंत द्वीप, भीम गोड़ा।

संपर्क : 9897532584, 9412919234, 9837051478, 9897886681, 9810203060, 9818260786.

इन्द्रियाँ बहिर्मुख क्यों बनायीं ?

- पूज्य बापूजी

आम आदमी, जो भक्ति के रास्ते चलते हैं उनकी एक बड़ी फरियाद रहती है कि भगवान ने इन्द्रियाँ बहिर्मुख क्यों बनायीं ? क्या वे चाहते हैं कि हम संसार में फँस मरें ?

भगवान स्वयं कहते हैं : **सुहृदं सर्वभूतानाम्...** मैं प्राणिमात्र का परम सुहृद अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी हूँ। तो दयालु माँ ऐसी चीज बनाये ही क्यों कि बेटा उसमें फँस मरे और दुःखी हो ? माँ तो बना दे, चलो माँ को थोड़ा अज्ञान है परंतु भगवान में तो अज्ञान का सवाल ही पैदा नहीं होता। तो भगवान ने इन्द्रियों को बहिर्मुख क्यों बनाया ? क्या भगवान को हमारे से नाराजगी है या द्वेष है ? या ऐसी बात तो नहीं है कि जैसे गाड़ियों के नमूने में सुधार होते-होते नये नमूने बनते हैं, ऐसे ही भगवान ने मनुष्य की इन्द्रियों को पहले बहिर्मुख बना लिया और अभी कुछ सुधार करके नया नमूना बनायेंगे ? परंतु 'कोई नया नमूना आ रहा है'- ऐसा किसी समाधिस्थ पुरुष की अनुभवयुक्त वाणी या किसी शास्त्र में वर्णन नहीं आता । वास्तव में जीवों के आखिरी-से-आखिरी जो नमूने बने, उनमें आखिरी-से-आखिरी, सब ऊँचाइयों को छू सके ऐसी मति-गति के धनी मनुष्य का नमूना भगवान ने बनाया है। उसके बाद भगवान तृप्त हो गये कि 'अहा ! मेरा भी जो गुरु बन सके, मेरा भी जो माई-बाप बन सके ऐसा मनुष्य का नमूना मैंने बना दिया।'

तो भगवान ने इन्द्रियाँ बहिर्मुख क्यों बनायीं इसका समाधान क्या है ?

इसका समाधान यह है कि हकीकत में जो भगवान ने बनाया है वह हमारे हित के लिए बनाया है। अगर इन्द्रियाँ बहिर्मुख नहीं होतीं तो हम बाहर का देख, चख, समझ नहीं पाते और इन्द्रियाँ केवल बहिर्मुख नहीं हैं। आप जब बाहर का चाहते हैं तब वे बहिर्मुख हो जाती हैं और आप जब बाहर का सब नश्वर समझकर जप-ध्यान में लग जाते हैं तो इन्द्रियाँ अंतर्मुख भी तो हो जाती हैं। तो आपके कार्य-अनुरूप साधन भगवान ने दिये हैं। विषय-विकारों का, बाहरी जगत का पसारा भी देखना है तो भले देख ले और इसमें विवेक करके मेरी तरफ आना है तो अंतर्मुख हो जा।

आप जैसा चाहते हैं इन्द्रियाँ वैसी हो जाती हैं। आप चाहते हैं बहिर्मुखता तो बहिर्मुख हो जाती हैं। आप चाहते हैं अंतर्मुखता तो अंतर्मुख हो जाती हैं। और अंतर्मुख होने के भी कई तरीके शास्त्रों ने, महापुरुषों ने बताये हैं : श्वासोच्छ्वास की गिनती, नादानुसंधान योग, जिह्वा तालु से लगाना, एक जगह पर नजर केन्द्रित करना, भगवान को प्रार्थना करना और जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ अन्तरतम चैतन्य की स्मृति- **वासुदेवः सर्वम्...** अनेक में एकत्व के दर्शन कर खुली आँख अंतर्मुखता !

तो भगवान ने इन्द्रियाँ बहिर्मुख बनायीं, ऐसा नहीं है। आप जब चाहें तब वे बहिर्मुख और जब चाहें तब अंतर्मुख ! इन्द्रियों के अंतर्मुख होने से मन शांत हो जायेगा। मन शांत होगा तो बुद्धि सम हो जायेगी और परमात्म-प्रसाद प्राप्त हो जायेगा।

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य १७५वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया मई २००७ के अंत तक अपना नया पता भेज दें ।

जब भगवान सूर्य ने गवाही दी

- पूज्य बापूजी

य इह रमणीयचरणा अभ्याशो
ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्...
य इह कपूयचरणा अभ्याशो
ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्...

'जो श्रेष्ठ, सुन्दर आचरणवाले होते हैं वे शीघ्र ही उत्कृष्ट योनि को प्राप्त होते हैं। जो अशुभ, अपवित्र आचरणवाले होते हैं वे शीघ्र ही अशुभ योनि को प्राप्त होते हैं।' **(छान्दोग्य उपनिषद् : ५.१०.७)**

जो अच्छा कार्य करता है, अच्छा चिंतन करता है जीवन में उसको अच्छी चीजें मिलती हैं, अच्छी संगति मिलती है, विचार भी अच्छे ही मिलते हैं, अच्छी आयु मिलती है। उसका स्वभाव अच्छा होने से मन भी अच्छा रहता है, स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है, भोग भी अच्छे मिलते हैं और अच्छे संस्कार लेकर वह सद्गति को पा लेता है। जो बुरे कार्य करता है, बुरे विचार करता है और बुराई के पीछे लगा रहता है उसको भोग भी बुरे मिलते हैं; शराब-कबाब, लहसुन, प्याज, बासी, तामसी भोजन आदि भोग उसे रुचते हैं और मिलते हैं, स्वभाव भी ऐसा बनता है, मित्र भी ऐसे मिलते हैं । मित्र व खुशामदखोर लोग मिलकर उसका बड़ा बुरा हाल कर देते हैं और फिर उसकी गति भी ऐसी ही हो जाती है।

अच्छे कर्म करनेवाले चाहे राजा भी बन जाते हैं तभी भी उनको अच्छे लोग और अच्छे स्वभाव का विशेष प्रसाद मिलता है । राजा तो कई हो गये लेकिन कच्छ के राजा श्री देसलजी (प्रथम) के जीवन में भगवान सूर्य के अस्तित्व का, दया का प्रभाव प्रकट हुआ । बात ऐसी थी कि कच्छ (वर्तमान में गुजरात राज्य का एक क्षेत्र) के एक किसान ने साहूकार से हजार कोरी (कच्छी चलन) का ऋण लिया था। समझ लो, आज के जमाने के एक लाख रुपये लिये थे। किसान ने साहूकार को पैसे चुका दिये थे लेकिन किसान के पास पैसे चुकाने की न कोई रसीद थी और न ही कोई गवाह था।

साहूकार ने कच्छ की राजधानी भुज के न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और न्यायाधीश ने आदेश दिया कि किसान द्वारा साहूकार को हजार कोरी लौटा दिये जायें।

दोपहर के समय राजा देसलजी विश्राम के लिए लेटे ही थे कि किसान आक्रांत करता हुआ राजा के महल के करीब आया और पुकार लगायी : 'अन्नदाता ! यह गरीब मारा जा रहा है, पीड़ित हो रहा है, आपके द्वार पर पुकार लगाता है, मेरी रक्षा कीजिये ।'

किसान की करुण पुकार सुनकर राजा देसलजी ने छज्जे में खड़े होकर उससे पूछा कि 'क्या बात है ?' किसान में सज्जनता थी, सच्चाई थी इसलिए राजा की सच्चाई और सज्जनता भी राजा को वहाँ रोक रखती है। किसान की सारी बात सुन राजा ने न्यायालय से मुकदमे के कागजात मँगवाये और पढ़े । दस्तावेज से यह स्पष्ट हो रहा था कि किसान ने हजार कोरी उधार लिये हैं और बायीं ओर 'साख श्रीसूरजनी' अर्थात् 'सूर्य भगवान की साक्षी' लिखा था लेकिन बाद में वे हजार कोरी साहूकार को वापस मिल गये इसका कुछ उल्लेख नहीं था।

उस समय लिखान की चौकड़ी (x) होती थी। साहूकार को पैसे चुका देने पर किसान लोग वहाँ (दस्तावेज में) चौकड़ी मार देते थे । अब चौकड़ी तो थी नहीं लेकिन किसान की बात में दम था। सच्चे व्यक्ति की आवाज में दम होता है लेकिन

साहूकार भी अपनी बात पर अडिग था कि 'मुझे किसान से पैसे नहीं मिले हैं। अगर किसान ने पैसे दिये होते तो मैं पैसे ले के उससे चौकड़ी लगवाता और मैं दुबारा-दुबारा पैसे क्यों लूँगा ?' साहूकार ने सफायी दी।

अब देसलजी के सामने यह समस्या खड़ी हो गयी कि एक तरफ तो किसान की बात में सच्चाई लग रही है, दूसरी तरफ साहूकार को पैसे मिल गये इसका कोई गवाह नहीं है, कोई लिखा-पढ़ी नहीं है, कोई चौकड़ी नहीं लगी है । अब मैं न्याय कैसे करूँ ? तभी 'साख श्रीसूरजनी' इस वाक्य पर उनका ध्यान गया और उनके अन्तर में प्रेरणा हुई।

गर्मियों के दिन थे, दोपहर का समय, तेज धूप । राजा ने धधकते सूर्यनारायण के सामने दस्तावेज रख दिये और प्रार्थना की : 'हे सूर्यनारायण देव ! इसमें लिखा है भगवान सूर्यदेव की साक्षी में हमारा लेना-देना हुआ है । अब महाराज ! आप ही बताओ सही क्या है ? लेना तो इसमें लिखा है लेकिन देना भी आपकी साक्षी में हुआ है कि नहीं हुआ है ? आप ही कुछ करो महाराज ! महाराज अब आप ही साक्षी (गवाह) हैं। आप इसमें अपनी मोहर लगाओ कि किसान सच्चा है कि साहूकार सच्चा है ? अगर किसान ने पैसा दिया है तो चौकड़ी तो है नहीं... महाराज ! आप ही कुछ करो...'

इस तरह सूर्यदेव को प्रार्थना करके देसलजी क्षण भर शांत हो गये। थोड़ी देर बाद आँखें खोलीं और उन दस्तावेजों को देखा तो चौकड़ी लगी दिखायी दी। राजा की आँखों में चमक आ गयी, दिल में खुशी की लहर छा गयी, चेहरे पर मुस्कान नृत्य करने लगी।

राजा ने किसान के आगे जाकर कहा : ''तुमने इसमें लिखवाया है कि 'सूर्यदेव की साक्षी' । देव भी कोई साक्ष्य देता है क्या ? तुम कैसी बात करते हो ?''

किसान बोला : ''महाराज ! देव साक्ष्य देता है। मैं सच्चा हूँ तो देव भी साक्ष्य देगा।''

राजा ने साहूकार को कड़क वाणी में कहा : ''जो सच्चाई हो, बोलो।''

''महाराज ! सच्चाई तो यही है कि इसने मुझे पैसे नहीं दिये हैं। यदि देता तो मैं इससे वहाँ चौकड़ी लगवाता।''

तब राजा ने कठोर आवाज में गर्जना की : ''देख ! चौकड़ी लगी हुई है।'' और साहूकार को दस्तावेज दिखाया। उसने भी चौकड़ी देखी।

साहूकार को कड़क शब्दों में डाँटते हुए राजा ने कहा : ''बोल ! यह चौकड़ी कैसे मिटायी ?''

बेईमान साहूकार काँपते हुए कहने लगा : ''महाराज ! चौकड़ी तो लगी थी लेकिन किसान चला गया तो मैंने तुरंत ही गीली-गीली स्याही पर बूरा (शक्कर का पाउडर) छिड़क दिया और उस बूरे को चीटियाँ खा गयीं। इसलिए चौकड़ी मिट गयी। मैंने बेईमानी की है।''

इतना सुनना था कि 'देसरा परमेसरा आ आ' (देसल परमेश्वर है।) के हर्षनाद से दिशाएँ गूँज उठीं। इस प्रकार कच्छ के राजा ने अलौकिक न्याय करके संसार में आदर्श स्थापित किया था ।

भगवान कहते हैं :

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।

'वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति और माया से अत्यन्त परे कहा जाता है।' (गीता : १३.१७)

कोई बेईमानी करता है और दस्तावेज बिल्कुल उसीके पक्ष में हैं तो भी न्यायाधीश अगर सात्त्विक है तो उसके अंतःकरण में भगवान प्रेरणा देंगे कि ऐसा नहीं, ऐसा है। कई न्यायाधीशों के जीवन में घटित ऐसी घटनाएँ मैंने सुनी हैं और मेरे जीवन में भी कई बार अनुभव आया है कि सच्ची बात की अंदर से सत्प्रेरणा मिलती है। **कोई कितना भी सुव्यवस्थित, एकदम सुनियोजित झूठ बोले लेकिन सच्चे आदमी की बात सुनते ही अंदर से कुछ होता है कि नहीं, पहलेवाले के कहने में कुछ गड़बड़ है और सच्चाई प्रकट हो जाती है।**

ईश्वरप्राप्ति ही उद्देश्य बना लो

- पूज्य बापूजी

फतेहगढ़ में गंगा-किनारे किला घाट है। वह सैन्य क्षेत्र है। वहाँ 'मात गंगे' नाम के एक साधु रहते थे। वे जप-तप, हवन के साथ-साथ गायों की बड़ी सेवा करते थे। उन्होंने गायों के नाम रखे थे गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती आदि। जिस गाय का नाम लेते, वही दौड़ी-दौड़ी आती।

तपस्या में वे ऐसे थे कि एक बार जब उनके आश्रम में भंडारा हो रहा था, तब संतों व भक्तों को आमंत्रण देने के साथ वे गंगा माई को भी न्यौता देने गये, बोले : ''कल भंडारा है मैया ! आइयो।''

जब भंडारा शुरू हुआ तो गंगा की धारा वहाँ से बहने लगी । देखनेवाले हैरान हो गये ! ऐसी सिद्धियाँ थीं उनके पास। लेकिन 'सर्वत्र भगवान हैं' इस प्रकार का ब्रह्मज्ञान का सत्संग नहीं था तो उन साधु के जीवन में क्या हुआ ?

उन्होंने एक पेड़ लगा रखा था । वह पेड़ फौजवालों ने कटवा दिया। पेड़ कटने के कारण वे बहुत दुःखी हुए। फौजवालों से तो टक्कर ले नहीं सकते थे । बदला लेने की कामनापूर्ति में विघ्न पड़ा तो क्रोध उत्पन्न हुआ।

कामात्क्रोधोऽभिजायते।। (गीता : २.६२)

उन्होंने बंदर का एक बच्चा पाल रखा था। वे इतने क्रुद्ध व दुःखी हुए कि उस बच्चे को छेड़-छेड़कर उससे अपने शरीर को कटवा-कटवा के लहूलुहान हो गये और अंत में अपने शरीर में आग लगाकर मर गये।

काहे को ऐसा करना ? उद्देश्य ईश्वरप्राप्ति बना लो, फिर दुनिया हमें जलाये तब भी लगेगा कि जलनेवाला शरीर है, मैं अमर आत्मा हूँ। दुनिया हमें धिक्कारे कोई बात नहीं, भगवान तो हमारे हैं !

दुनिया भली धिकारे, दाता तूं न धिकारज ।
मुकदर मुंहिंजे जा मालिक, बिगड़ी मुंहिंजी बणाइज ।।

अर्थात्

दुनिया भले धिक्कारे दाता ! तू नहीं धिक्कारना ।
ऐ मेरे मुकद्दर के मालिक ! बिगड़ी मेरी बनाना ।।

उद्देश्य अगर वाहवाही पाना बनता है तो जलाता है, उद्देश्य अगर भोगप्राप्ति बनता है तो सताता है और उद्देश्य अगर भगवत्प्राप्ति बन जाता है तो युद्ध करना भी तार लेता है, रसोई बनाना भी तार लेता है। उद्देश्य भगवत्प्राप्ति था तो शबरी तर गयी। उद्देश्य परमात्मप्रीति था तो गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण को छछिया भर छाछ पर नचा देती थीं। उद्देश्य ईश्वरप्राप्ति था तो छः महीने के अंदर ध्रुव के आगे भगवान प्रकट हो गये।

आप अपनी चाह में ईश्वरप्राप्ति की चाह डाल दो। मुझे ईश्वर को पाना है, बस। यह इरादा पक्का कर लो क्योंकि ईश्वर के सिवाय पिछले जन्मों में जो मिला वह नहीं रहा तो इस जन्म का भी नहीं रहेगा।

भगवान को इसलिए प्राप्त नहीं कर पा रहे क्योंकि मूर्ख मन भगवान को पाने की महत्ता नहीं जानता है। भगवान को पाने की महत्ता समझ में आ जाय और भगवान को पाने का इरादा पक्का हो जाय तो आपकी पंचानवे प्रतिशत साधना हो गयी ! बाकी पाँच प्रतिशत में तीन प्रतिशत आपकी भावना, श्रद्धा और दो प्रतिशत आपकी साधना !! केवल उद्देश्य बना लो ईश्वरप्राप्ति का। नहीं तो ऐसे-ऐसे महात्मा, ऐसे-ऐसे तपस्वी हो गये कि फूँक मार के मुर्दे को जिंदा कर दें परंतु उद्देश्य ईश्वरप्राप्ति नहीं रहा तो अंत में दुःखी होकर ही उनको शरीर त्यागना पड़ा ।

हिरण्यकशिपु और रावण की भी तो अच्छी-खासी तपस्या थी परंतु अंत में क्या हो गया ! और शबरी भीलन का उद्देश्य ईश्वरप्राप्ति था तो इनके आगे उसकी कोई ज्यादा तपस्या थी क्या ? मेरी कोई ज्यादा तपस्या थी क्या ? चालीस दिन में तो मैं स्नातक नहीं हो सकता हूँ, चालीस दिन में मैं एक कक्षा भी पास नहीं कर सकता हूँ लेकिन चालीस दिन में मुझे प्रभु मिल गये। चालीस दिवस की मेरी तीव्र तड़प ने प्रभुप्राप्ति करा दी। यह कितना सस्ता सौदा है ! राजा परीक्षित को सात दिन में ईश्वरप्राप्ति हो गयी, राजा जनक को घोड़े की रकाब में पैर डालते-डालते ईश्वरप्राप्ति हो गयी।

इसलिए यह दृढ़ निश्चय कर लो कि 'मुझे तो इसी जन्म में भगवान को पाना है। जो कभी हमको छोड़ता नहीं और जिसको हम छोड़ नहीं सकते उसकी प्रीति पानी है। चाहे मान मिले, चाहे अपमान मिले, चाहे सुख आये, चाहे दुःख आये - ये सब आने-जानेवाले हैं किंतु भगवान सदा रहनेवाले हैं। प्रभु ! मेरा और तेरा संबंध पक्का है।' ऐसा विचार करके चुप बैठ जाओ। फिर मन इधर-उधर जाय कि 'मैं कामी हूँ, क्रोधी हूँ, लोभी हूँ, लालची हूँ, मूर्ख हूँ, अज्ञानी हूँ' तो फिर से भगवान को कह दो कि 'जैसे भी हैं, प्रभु ! हम तेरे हैं।' जैसे बच्चा कैसा भी हो- नाक से सिनक बहती हो, कपड़े मैले-कुचैले हों, स्नान नहीं किया हो पर माँ के लिए तीव्र तड़प और पुकार उसे माँ की गोद में पहुँचा देती है। ऐसे ही भगवान के लिए तीव्र तड़प और पुकार आपकी साधना में चार चाँद लगा देगी। सीधी उड़ान होगी, पक्की बात है। मौज हो जायेगी मौज ! आपका काम तो बन ही जायेगा, आपके परिवार का भी मंगल हो जायेगा।

तुम्हारे आत्मा का स्वभाव जन्मने-मरने, बेवकूफ बनने-बनाने, दुःख देने और लेने का नहीं है। तुम्हारे आत्मा का स्वभाव सुखस्वरूप, निर्भयरूप और ज्ञानस्वरूप है।

- परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

भक्त लोचनदासजी की वचननिष्ठा

बंगाल के बरदवान जिले के कोग्राम में जन्मे लोचनदासजी उच्चकोटि के भगवद्भक्त थे। ग्यारह वर्ष की उम्र में माता-पिता ने उनका विवाह जबरदस्ती एक सुंदर कन्या से कर दिया परंतु लोचनदासजी संत नरहरिदासजी के चरणों में चले गये व कई वर्षों तक उन्हींके पास रहे और उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। पिता को ज्ञात हुआ तो वे संत के पास गये व पुत्र को समझाकर घर ले आये। लोचनदासजी को पत्नी को लेने के लिए ससुराल भेजा गया। ससुराल आमोदपुर जाकर उन्होंने ग्राम में सामने से आती सुंदर स्त्री को शालीन शब्दों में 'माताजी' कह अपने श्वसुर का पता पूछा। स्त्री ने उँगली के इशारे से रास्ता बताया और नीचा मुँह कर चली गयी। बहुत समय पश्चात् आये जमाई का आदर-सत्कार कर रात्रि में एक कमरे में भेजा गया। वहाँ रास्ते में मिली स्त्री को देख लोचनदासजी हतप्रभ रह गये। स्त्री भी समझ गयी कि अनजाने में 'माँ' कहकर पूछनेवाले ये मेरे पतिदेव ही हैं। धर्मनिष्ठ स्त्री व पति इस विचित्र स्थिति में अश्रु बहाने लगे। कुछ समय में स्वस्थ हो व अश्रु पोंछ सदाचारी स्त्री ने कहा : ''मुझे आपके सान्निध्य की आवश्यकता है न कि विषय-वासना की। मैं आपके साथ रहकर आपकी सेवा करना चाहती हूँ। आपसे कभी काम की इच्छा नहीं रखूँगी। मुझे चाहे आपके स्पर्श का अधिकार नहीं किंतु साथ रहने का पूरा अधिकार है।''

दोनों ने जीवन भर भगवद्भजन में रहकर अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया। धन्य हैं संत लोचनदासजी व उनकी पत्नी की संयमनिष्ठा और धर्मनिष्ठा !

खेल-खेल में परम धाम तक

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

मनुष्य स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप होने के बावजूद भी दीन-हीन बनकर संसार में भटक रहा है। इस हेतुरहित भटकान को छोड़कर अपनी महिमा में जगने के लिए साक्षात्कार का दृढ़ संकल्प करना ही होगा।

इरादा पक्का कर लो । सुख-दुःख सपना सच्चिदानंद परब्रह्म परमात्मा अपना। हर परिस्थिति में सम रहने का यह साधन सँजो लो। संसार तुम्हारे लिए मोक्ष की पाठशाला है।

देर-सवेर संकल्प सिद्ध होते ही हैं- ऐसी श्रद्धा तो सामान्य मनुष्य को भी होती है, भले ही वह उस श्रद्धा से अनजान हो। छोटा बच्चा राजा, मंत्री, सेठ, गाड़ी, विमान आदि के खेल खेलता है, तब तक माँ उसे कुछ नहीं कहती परंतु जैसे ही बच्चा भिखारी का अभिनय करने का खेल खेलते हुए आवाज लगाता है कि 'भगवान के नाम पर पैसा दे दो माई !... खाना दे दो भाई !... गरीब भूखे पर दया कर दो बाबूजी !...' तब माँ तुरंत उसे धमकाकर चुप करा देती है और उस खेल को छोड़कर दूसरा कोई खेल खेलने को कहती है क्योंकि भिखारी बनने का विचार भी कहीं सच हो जाय तो ? और बात भी सही है। प्रत्येक व्यक्ति अभी जो कुछ है वह उसकी कल्पना के अनुसार ही है।

जीव का परम हितैषी परमात्मा के समान अन्य कोई है ही नहीं। परमात्मा का सम्पूर्ण रूप जान लेने के बाद तुम उनसे भिन्न नहीं रहोगे। फिर भी यह जीव संसारी मित्र बनाने में, उन्हें राजी करने में ही अपना हित समझता है। मित्रों को राजी रखने और शत्रुरूपी काँटा निकालने की चिंता करते-करते खुद चिता में जल जाता है। इष्ट को मजबूत बनाने के बदले अनिष्ट को ठीक करने के लिए दौड़ता है। तुम्हारा परम इष्टदेव तुम पर राजी हो तो अनिष्ट तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर सकता।

अद्वैतनिष्ठा आखिरी चीज है। उसे सिद्ध करने के लिए ईश्वर या सद्गुरु के प्रति जितनी अनन्य भक्ति होती है उतनी कल्याणकारी होती है। ईश्वर और सद्गुरु के बीच भेद नहीं है। उनके प्रति अनन्य भाव जग जाय तो वे तुम्हारे जीवन का सूत्र अपने हाथ में लेकर तुम्हें खेल-खेल में आत्म-परमात्म पद तक ले जायेंगे । सद्गुरु के प्रति अनन्य निष्ठावाले शिष्य का सब प्रकार से हित हो इसकी सँभाल वे अवश्य रखते हैं। फिर चाहे दोनों के बीच कितने ही मीलों का भौतिक अंतर क्यों न हो! सद्गुरु तो ब्रह्मस्वरूप होते हैं, इससे वे देश-काल से परे होते हैं।

जो भक्त आर्तभाव से भगवन्नाम जपता हुआ भगवद्विश्रांति में चला जाता है, उसके अवगुण मिटने लगते हैं; आत्मविश्रांति, भगवद्-प्रसादजा बुद्धि बढ़ने लगती है। दुनिया भर की विद्याएँ सीख लें फिर भी वह परम प्रसाद नहीं मिलता जो भगवद्-प्रसादजा मति से मिलता है । भगवद्-प्रसादजा मति से वह निर्विकारिता, निरंहकारिता, निर्दुःखता और जीते जी अपने आत्मस्वभाव का परिचय पाता है। आजकल भौतिक विकास की अंधी दौड़ में तो वस्तुएँ और सुविधाएँ बढ़ाना ही विकास मानते हैं। असली विकास तो वस्तुओं की, व्यक्तियों की, परिस्थितियों की पराधीनता के बिना ही जो चैतन्य सुख चमचमा रहा है, उसको पाना-जानना है।

(शेष पृष्ठ २० पर)

भगवान की 'स्मृति' की महत्ता

श्री भगवान की 'स्मृति' ही महान पुण्य, परम सौभाग्य, अतुलनीय बुद्धिमत्ता, आदर्श सद्‌गुण, दिव्य सम्पत्ति है और समस्त सद्‌वृत्तियों की जननी है तथा भगवान की 'विस्मृति' ही घोर पाप, दुःसह दुर्भाग्य, महामूर्खता, जघन्य दुर्गुण, दारुण विपत्ति है व समस्त असत् वृत्तियों को उत्पन्न करती है।

रजोगुण तथा तमोगुण की प्रबलता भगवान की विस्मृति से ही होती है और उसीसे अहंकार, अभिमान, द्वेष, क्रोध, हिंसा, मिथ्याचार आदि बढ़कर मनुष्य के इहलोक तथा परलोक को घोर दुःखमय बना देते हैं। इन दुर्गुणों, दुराचारों तथा दुष्ट वृत्तियों से बचना चाहते हो तो निरन्तर भगवान का स्मरण करो। भगवान का स्मरण करते हुए समस्त वैध कार्य भगवत्-सेवा के रूप में करने लगो, तब ये सारी असत् वृत्तियाँ नष्ट हो जायेंगी, जीवमात्र में निरन्तर भगवान के दर्शन होंगे और तुम्हारा प्रत्येक कार्य भगवान की पूजा बन जायेगा।

प्रत्येक जीव में भगवान बस रहे हैं, प्रत्येक जीव भगवान का शरीर है अथवा भगवान ही प्रत्येक जीव के रूप में प्रकट हो रहे हैं। यह निश्चय करके प्रत्येक जीव का सम्मान करो, प्रत्येक जीव को सुख पहुँचाओ और प्रत्येक जीव का हित-साधन करो। किसीको हीन मत समझो, किसीको नीचा मत समझो। हीनता, दीनता, नीचापन किसीमें समझना चाहो तो अपने में समझो और है भी सचमुच यही बात।

जो भगवान के सामने अपने में हीनता-दीनता समझकर सदा नत रहता है, उसी पर भगवान की कृपा-वर्षा होती है। भगवान को दैन्य प्रिय है और अभिमान अप्रिय। वे अभिमान को चूर्ण करते हैं और दीन को अपनाते हैं। भगवान जिसको अपनाते हैं, वही वास्तव में महान भाग्यशाली और शुभ चरित्रवान है। जो भोगों का गुलाम है, जिस पर अनित्य तथा दुःखयोनि भोगों का आधिपत्य है, वह अत्यन्त अभागा व पापजीवन है। वह यहाँ और वहाँ केवल दुःख ही पैदा करता है तथा दुःख ही भोगता है।

जो स्वयं अभिमान से रहित और दूसरों को मान देनेवाला है, स्वयं आशा से रहित व दूसरों की आशाओं को यथासाध्य पूर्ण करनेवाला है, अपने दुःख को दुःख न मानकर दूसरे के सुख के लिए सब प्रकार के दुःखों को वरण करनेवाला है तथा अपने अधिकार का त्याग करके दूसरों के अधिकार की रक्षा करनेवाला है, वही वस्तुतः सबमें भगवान को देखकर सबकी सेवा करनेवाला है। 'सबमें भगवान ही हैं' - यों केवल मुँह से कहनेवाला नहीं।

जो सबमें भगवान जानकर भगवान का नित्य अखण्ड स्मरण करते हुए भगवान की सेवा के लिए ही सब काम करता है, वही वास्तव में परम पुण्यवान, महान सौभाग्यशाली, यथार्थ बुद्धिमान, सर्वसद्‌गुण-विभूषित, सदा सुसम्पन्न और सम्पूर्ण सद्‌वृत्तियों का समुद्र बन जाता है। वह प्रति क्षण अपने जीवन के प्रत्येक स्तर से और प्रत्येक चेष्टा से समस्त जगत में दैवी सम्पत्ति का, भगवद्‌भावों का, स्वयं भगवान का ही वितरण करता रहता है। उसीका जीवन सफल है, वही धन्य जीवन है।

ऐसा आदर्श पुरुष स्वयं ही धन्य जीवन नहीं होता, वह अपने जन्म व जीवन से अपने देश को, धर्म को, जाति को तथा माता-पिता को भी धन्य कर देता है और युगों तक वह जन-जन के जीवन को उच्च स्तर पर पहुँचानेवाला परम आदर्श बन जाता है।

अधिक मास माहात्म्य

(१७ मई से १५ जून २००७)

अधिक मास में सूर्य की संक्रांति (सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश) न होने के कारण इसे 'मलमास' (मलिन मास) कहा गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने इसका स्वामित्व स्वीकार कर अपना 'पुरुषोत्तम' नाम इसे प्रदान किया है।

व्रत विधि : इस मास में आँवले व तिल का उबटन शरीर पर मलकर स्नान करना, आँवले के पेड़ के नीचे भोजन करना भगवान श्री पुरुषोत्तम को अतिशय प्रिय है, साथ ही यह स्वास्थ्यप्रद एवं प्रसन्नताप्रद भी है।

इस मास में भगवान के मंदिर, जलाशय या नदी में अथवा तुलसी, पीपल आदि पूजनीय वृक्षों के सम्मुख दीप-दान करने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं, दुःख-शोकों का नाश होता है, वंशदीप बढ़ता है, ऊँचा सान्निध्य मिलता है तथा आयु बढ़ती है।

भगवान श्रीकृष्ण इस मास की व्रत-विधि एवं महिमा बताते हुए कहते हैं : ''इस मास में मेरे उद्देश्य से जो स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण तथा देवार्चन किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। जिन्होंने प्रमाद से मलमास को खाली बिता दिया, उनका जीवन मनुष्यलोक में दारिद्र्य, पुत्रशोक तथा पाप के कीचड़ से निन्दित हो जाता है इसमें संदेह नहीं।

सुगन्धित चंदन, अनेक प्रकार के फूल, मिष्टान्न, नैवेद्य, धूप, दीप आदि से लक्ष्मीसहित सनातन भगवान तथा पितामह भीष्म का पूजन करें। घंटा, मृदंग और शंख की ध्वनि के साथ कपूर और चंदन से आरती करें। ये न हों तो रुई की बत्ती से ही आरती कर लें। इससे अनन्त फल की प्राप्ति होती है। चंदन, अक्षत और पुष्पों के साथ ताँबे के पात्र में पानी रखकर भक्ति से प्रातः पूजन के पहले या बाद में अर्घ्य दें। अर्घ्य देते समय भगवान ब्रह्माजी के साथ मेरा स्मरण करके इस मंत्र को बोलें :

देवदेव महादेव प्रलयोत्पत्तिकारक।
गृहाणार्घ्यमिमं देव कृपां कृत्वा ममोपरि॥
स्वयम्भुवे नमस्तुभ्यं ब्रह्मणेऽमिततेजसे।
नमोऽस्तुते श्रियानन्त दयां कुरु ममोपरि॥

'हे देवदेव ! हे महादेव ! हे प्रलय और उत्पत्ति करनेवाले ! हे देव ! मुझ पर कृपा करके इस अर्घ्य को ग्रहण कीजिये। तुझ स्वयंभू के लिए नमस्कार तथा तुझ अमिततेज ब्रह्मा के लिए नमस्कार। हे अनन्त ! लक्ष्मीजी के साथ आप मुझ पर कृपा करें।'

मलमास का व्रत दारिद्र्य, पुत्रशोक और वैधव्य का नाशक है। चतुर्दशी के दिन उपवास कर अंत में उद्यापन करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। यदि दारिद्र्य हो तो व्यतीपात योग में, द्वादशी, पूर्णिमा, चतुर्दशी, नवमी व अष्टमी के दिन शोकविनाशक उपरोक्त व्रत को करना चाहिए। जो उपचार मिल जायें उनसे ही यह कर ले।

मलमास में संध्योपासन, तर्पण, श्राद्ध, दान, नियम-व्रत ये सब सफल होते हैं। इसके व्रत से ब्रह्महत्या आदि सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

विधिवत् सेवते यस्तु पुरुषोत्तममादरात्।
कुलं स्वकीयमुद्धृत्य मामेवैष्यत्यसंशयम्॥

प्रति तीसरे वर्ष में पुरुषोत्तम मास के आगमन पर जो व्यक्ति श्रद्धा-भक्ति के साथ व्रत, उपवास, पूजा आदि शुभकर्म करता है, निःसंदेह वह अपने समस्त परिवार के साथ मेरे लोक में पहुँचकर मेरा

सान्निध्य प्राप्त करता है।''

इस महीने में केवल ईश्वर के उद्देश्य से जो जप, सत्संग, व सत्कथा-श्रवण, हरिकीर्तन, व्रत, उपवास, स्नान, दान या पूजनादि किये जाते हैं, उनका अक्षय फल होता है और व्रती के सम्पूर्ण अनिष्ट नष्ट हो जाते हैं। निष्काम भाव से किये जानेवाले अनुष्ठानों के लिए यह अत्यंत श्रेष्ठ समय है। 'देवी भागवत' के अनुसार यदि दान आदि का सामर्थ्य न हो तो संतों-महापुरुषों की सेवा सर्वोत्तम है, इससे तीर्थस्नानादि के समान फल प्राप्त होता है।

अधिक मास में वर्जित

इस मास में सभी सकाम कर्म एवं व्रत वर्जित हैं। जैसे - कुएँ, बावली, तालाब और बाग आदि का आरम्भ तथा प्रतिष्ठा, नवविवाहिता वधू का प्रवेश, देवताओं का स्थापन (देवप्रतिष्ठा), यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह, नामकर्म, मकान बनाना, नये वस्त्र एवं अलंकार पहनना आदि।

अधिक मास में करने योग्य

प्राणघातक रोग आदि की निवृत्ति के लिए रुद्रजप आदि अनुष्ठान, दान व जप-कीर्तन आदि, पुत्रजन्म के कृत्य, पितृमरण के श्राद्धादि तथा गर्भाधान, पुंसवन जैसे संस्कार किये जा सकते हैं।

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

गंगा गौरव गान

(गंगा दशहरा : १७ से २६ मई २००७)

भारतीय संस्कृति में कलिमलनाशिनी गंगा की अपार महिमा है। प्राचीन मनीषियों ने इससे प्रभावित होकर अपनी भाव-पुष्पांजलियाँ विभिन्न स्वरूपों में अर्पित कर स्वयं को कृतकृत्य किया है।

'श्रीमद्भागवत महापुराण' में गंगाजी राजा भगीरथ से प्रश्न करती हैं :

किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम्।
मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम्॥

'इस कारण से भी मैं पृथ्वी पर नहीं जाऊँगी कि लोग मुझमें अपने पाप धोयेंगे। फिर मैं उस पाप को कहाँ धोऊँगी ? भगीरथ ! इस विषय में तुम स्वयं विचार कर लो।'

जैसा महत्त्वपूर्ण प्रश्न था, वैसा ही महाराज भगीरथ ने गूढ़ प्रत्युत्तर भी दिया :

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मनिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसंगात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥

'माता ! जिन्होंने लोक-परलोक, धन-संपत्ति और स्त्री-पुत्र की कामना का संन्यास कर दिया है, जो संसार से उपरत होकर अपने-आप में शांत हैं, जो ब्रह्मनिष्ठ और लोकों को पवित्र करनेवाले परोपकारी सज्जन हैं, वे अपने अंगस्पर्श से तुम्हारे पापों को नष्ट कर देंगे क्योंकि उनके हृदय में अघरूप अघासुर को मारनेवाले भगवान सर्वदा निवास करते हैं।' (९.९.५-६)

तमसा के तीर पर निवास करनेवाले महर्षि वाल्मीकिजी की 'गंगाष्टक-स्वरलहरी' गंग-तरंग की भाँति मन-वाणी को भी पुनीत भावनाओं से झंकृत कर देती है।

महाकवि कालिदासकृत 'गंगाष्टकम्' का पाठ करने से ऐसा लगता है, मानो गंगा का अमृततुल्य जल तन-मन को पवित्र कर रहा है।

श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी कल्मषनाशिनी भगवती श्रीभागीरथी के भूतल पर अवतीर्ण होने को मानव-जीवन को सार्थक बनाने हेतु सर्वोत्तम उपलब्धि के रूप में स्वीकार करते हैं। 'गंगाजललवकणिका पीता' पद इसी सिद्धांत की पुष्टि करता है। तुलसीदासजी तो जीवन से मुक्त होने की भी कामना न करते हुए बार-बार श्री रघुनाथजी का दास होकर गंगा-किनारे रहने को ही जीवन-साफल्य मानते हैं। भगवती गंगा के प्रति अपने भावों का भव्यतम समर्पण करते हुए उन्होंने 'श्रीरामचरितमानस' में कहा है :

गंग सकल मुद मंगल मूला।
सब सुख करनि हरनि सब सूला॥

'गंगाजी समस्त आनंद-मंगलों की मूल हैं। वे सब सुखों को करनेवाली और सब पीड़ाओं को हरनेवाली हैं।' **(अयो. कां. : ८६.२)**

व्यंग्यकला प्रवीण युवराज अंगद के मुख से संत तुलसीदासजी ने गंगा के विषय में कहलवाया :

राम मनुज कस रे सठ बंगा।
धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥

'क्यों रे मूर्ख-उद्दण्ड ! श्रीरामचंद्रजी क्या मनुष्य हैं ? कामदेव क्या धनुर्धारी हैं ? और गंगाजी क्या नदी हैं ?' **(लंका कां. : २५.३)** - यह तो देश में व्याप्त रावण जैसे जड़मति लोगों के मुख पर करारा तमाचा है, जो भगवान श्रीराम को मनुष्य, गंगा को मात्र नदी मानते हैं।

धन्य देस सो जहँ सुरसरी।

यह भारत देश इसलिए धन्यवाद का पात्र है कि यहाँ गंगा जैसी पावन देवसरिता का निवास है। **(उत्तर कां : १२६.३)**

रुड़की विश्वविद्यालय में गंगाजल पर कुछ प्रयोग हुए थे, जिनका निष्कर्ष था कि गंगाजल में जीवाणुओं को मारने की शक्ति अन्य नदियों के जल से अधिक है। हमारे वैद्यक शास्त्र इस सुधातुल्य गंगाजल के विषय में लिख चुके हैं :

स्वादु पाकरसं शीतं द्विदोषशमनं तथा।
पवित्रमपि पथ्यं च गंगावारि मनोहरम्॥

'मनोहर गंगाजल स्वादिष्ट, पाकरसयुक्त, शीतल, द्विदोष का शामक, पवित्र तथा पथ्यरूप है।'

जिस गंगा के विषय में भगवान श्रीकृष्ण ने **स्रोतसामस्मि जाह्नवी**- 'स्रोतों में मैं गंगा हूँ' - कहकर यशोगान किया है, उस महिमामयी माँ गंगा के विषय में भला क्या कहा जा सकता है ?

*

(पृष्ठ १६ का शेष)

अपने सुखस्वरूप आत्मा का आनंद पाना ही असली विकास है। एक-दूसरे का शोषण करके देह का पोषण करना, अहंकार को सजाना - ये विकास का भ्रम है, भ्रम।

भगवद्-सुमिरन का, परिस्थितियों में सम रहने की सजगता का, परमात्म-विश्रांति का, आकाश में एकटक निहारने का, श्वासोच्छ्वास में सोऽहं जप द्वारा समाधि सुख में जाने का आदरसहित अभ्यास करना एवं कभी-कभी एकान्त में समय गुजारना। अपनेको स्वार्थ और संसार में खपने से बचाओ। सेवा, सुमिरन और एकान्त से आत्मा के आनंद में आओ।

*

शनि की क्रूर दृष्टि से रक्षा

'भविष्य पुराण' में आता है कि एक बार त्रेतायुग में अनावृष्टि के कारण भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा । उस घोर अकाल में कौशिक मुनि स्त्री-पुत्रों सहित अपना निवास स्थान छोड़कर दूसरे प्रदेश में निवास करने के लिए निकल पड़े। कुटुंब का भरण-पोषण दूभर हो जाने के कारण बड़े कष्ट से उन्होंने अपने एक बालक को मार्ग में ही छोड़ दिया । वह बालक अकेला भूख-प्यास से तड़पता हुआ रोने लगा । उसे अकस्मात् एक पीपल का वृक्ष दिखायी दिया। वह पीपल के फलों को खाकर तथा समीपवर्ती बावड़ी का ठंडा जल पीकर समय व्यतीत करने लगा । इसीसे उसका नाम 'पिप्पलाद' पड़ा।

उस बालक ने वहीं कठिन तपस्या आरंभ कर दी। एक दिन वहाँ देवर्षि नारद पधारे। पिप्पलाद ने उन्हें प्रणाम कर आदरपूर्वक बैठाया । दयालु नारदजी इस नन्ही उम्र में उसकी तपस्या एवं नम्रता को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने बालक के उपनयन आदि सब संस्कार कर उसे वेद का अध्ययन कराया, साथ ही द्वादशाक्षर मंत्र **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** की दीक्षा दी।

अब पिप्पलाद प्रतिदिन भगवान का ध्यान एवं गुरुमंत्र का जप करने लगा । थोड़े ही समय में बालक के तप से संतुष्ट होकर भगवान विष्णु वहाँ प्रकट हुए । अपने सद्गुरु देवर्षि नारदजी के श्रीमुख से सुने हुए वचनों के आधार पर बालक ने उन्हें पहचान लिया। भगवान ने प्रसन्न होकर उसे ज्ञान और योग का उपदेश प्रदान किया एवं भक्ति का आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये । भगवान के उपदेश से वह बालक महाज्ञानी महर्षि हो गया ।

एक दिन महर्षि पिप्पलाद ने नारदजी से पूछा : ''महाराज ! किस कर्म के फलस्वरूप मुझे इतना कष्ट उठाना पड़ा ? इतनी छोटी अवस्था में भी मैं क्यों ग्रहों द्वारा पीड़ित हो रहा हूँ ? मेरे माता-पिता का कुछ भी पता नहीं, वे कहाँ हैं ?''

नारदजी बोले : ''पिप्पलाद ! शनैश्चर (शनि) ग्रह ने तुम्हें बहुत पीड़ा पहुँचायी है । आज यह संपूर्ण देश उसके मंदगति से चलने के कारण उत्पीड़ित है। शनि की क्रूर दृष्टि के कारण ही तुम्हारा माता-पिता से वियोग हुआ है। देखो, वह अभिमानी शनैश्चर ग्रह आकाश में प्रज्वलित दिखायी पड़ रहा है।''

यह सुनकर महर्षि पिप्पलाद अत्यंत क्रोधित हो गये । उन्होंने शनि ग्रह को ग्रहमंडल से नीचे गिरा दिया। यह अद्भुत दृश्य देखकर देवता वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने महर्षि का क्रोध शांत किया। भगवान ब्रह्माजी ने महर्षि पिप्पलाद को वरदान देते हुए कहा : ''जो भी शनिवार को भक्तिभाव से तुम्हारा पूजन करेंगे अथवा 'पिप्पलाद' नाम स्मरण करेंगे उन्हें सात जन्म तक शनि की पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ेगी और वे पुत्र-पौत्र से युक्त होंगे।''

तब पिप्पलादजी ने शनि को ग्रह रूप में पुनः प्रतिष्ठित किया और यह मर्यादा स्थापित कर दी कि शनि सोलह वर्ष तक के बालकों को आज से पीड़ा नहीं पहुँचायेगा।

अद्यप्रभृति बालानां वर्षादाषोडशाद् ग्रह ।
पीडा त्वया न कर्तव्या एष मे समयः कृतः ॥

(स्कंद पुराण, रेवा खंड : ४२.३५)

'शिवपुराण' में आता है कि गाधि, कौशिक तथा महामुनि पिप्पलाद - इन मुनित्रय का स्मरण करने से शनिग्रह कृत पीड़ा दूर हो जाती है।

गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः ।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः ॥

(शिव पुराण, शतरुद्र संहिता : २५.२०)

आठ सम्यक् साधन

- पूज्य बापूजी के सत्संग से

युवराज सिद्धार्थ (महात्मा बुद्ध) का विवेक जगा। उसने देखा, इस क्रूर काल ने, क्रूर अहं ने, क्रूर वासनाओं ने मानव-जाति को बहुत पीड़ित कर दिया, बीमार बना दिया, मृतप्रायः बना दिया।

महात्मा बुद्ध ने करुणा और पोषण का मार्ग अपना लिया। जो भी बुद्धत्व (आत्मज्ञान) को पाता है वह करुणा और दूसरों का पोषण किये बिना रह नहीं सकता। आप अपने जीवन में क्रूरता पसन्द करोगे कि करुणा पसन्द करोगे ? करुणा पोषक है, क्रूरता शोषक है।

महात्मा बुद्ध ने जीवन को पोषित करनेवाले आठ उपाय खोज लिये :

(१) सम्यक् दृष्टि : सम्यक् प्रकार से सोचो। संसार दुःखमय है। इच्छा से ही समस्त दुःखों की उत्पत्ति होती है। इच्छा (तृष्णा) का त्याग कर देने से दुःख नष्ट हो जाते हैं। 'इतना मिल गया तो क्या ? इतना भोग लिया तो क्या ? इतना कर लिया तो क्या ? आखिर क्या...' इस तरह परिणाम का विचार करो।

(२) सम्यक् संकल्प : ठीक-ठीक संकल्प करो। जैसा संकल्प मन में उठे, वैसा करने लगे तो परिणाम में दुःख भोगना पड़ेगा। किसी चीज का विज्ञापन टीवी. में देख लिया और बिना विचारे वही खरीद के लाये। पति बेचारा कमा-कमा के थका और पत्नी बेचारी विज्ञापन का शिकार बनकर जेब खाली करती रहे, ऐसा न हो। इसी प्रकार दूसरे व्यवहार में, संकल्प में आगे-पीछे का, परिणाम का विचार करके निर्णय करें। प्रतिदिन ईश्वरप्राप्ति का महासंकल्प भी करें। राग-द्वेष, चिंता, भय, शोक... स्वाहा ऐसा दिन में एक-दो बार कर दिया करें।

(३) सम्यक् वचन : सोच-विचारकर बोलें। सत्य, हितकर, सारगर्भित एवं प्रिय बोलें।

(४) सम्यक् व्यवहार : आप जो अपने लिए अच्छा नहीं मानते हैं, नहीं चाहते हैं वह दूसरों के लिए न करें। आप नहीं चाहते हैं कि आपको कोई ठगे, आपका कोई अपमान करे, आपका कोई शोषण करे तो आप भी किसीको न ठगो, किसीका अपमान या शोषण मत करो।

(५) सम्यक् आजीविका : सच्चाई से आजीविका चलाना। झूठ-कपट, बेईमानी या खुशामद करके ज्यादा ऐश-आराम से जीने की जरूरत नहीं है। अपनी फालतू इच्छाएँ, वासनाएँ हटाकर, आवश्यकता कम करके आप निर्भीक होकर जीयें। शुद्ध कमाई से जीयें ताकि बुद्धि के विचार शुद्ध रहें।

जो खूब अनाप-शनाप धन इकट्ठा करके बच्चों को सुखी रखना चाहते हैं, उनके बच्चे-बच्चियों की बुद्धि बिगड़ती है और उनकी भी बुद्धि बिगड़ती है।

(६) सम्यक् व्यायाम : कर्म शुद्धि अर्थात् शरीर को और मन को ठीक-ठीक कसरत मिले।

सुबह सूर्योदय से पहले उठना यह सम्यक् प्रकार का जागरण है। फिर रात्रि का रखा हुआ पानी पीकर घूमना। फिर कोमोड पर नहीं, पैर जमाकर बैठ सकें, ऐसे शौचालय में शौच जाना। स्नान, प्राणायाम आदि करना। जो भोजन स्वास्थ्य के लिए अनुकूल पड़े, पौष्टिक हो वैसा भोजन करना। चटोरेपन का त्याग करना। खमन, भेलपुरी, मावा, रसगुल्ला स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं हैं।

अगर आप स्वस्थ रहना चाहते हैं तो रात्रि को सोने से एक-दो घंटे पहले थोड़ा दूध पी लें। सोने से पहले शौच जायें। शौच आये चाहे न आये, जायेंगे तो *थोड़ा-बहुत मल निष्कासित होगा। इससे वायु* संबंधी अस्सी प्रकार की बीमारियाँ और पित्त संबंधी बत्तीस प्रकार की बीमारियाँ मिटेंगी ! इससे बहुत गजब का फायदा होता है।

सप्ताह में एक दिन बिना छिलका उतारे, कम नमकवाली करेले की सब्जी खायें। कार्तिक में करेला व भादों में दही न खायें। रात्रि को दही और अष्टमी को नारियल खाने से बुद्धि कमजोर होती है। यदि कोई महिला मासिक धर्म में है तो उसके द्वारा आटा गूँधा जाना और रोटी बनायी जानी, बेटों और परिवारवालों की बुद्धि को मंद करनेवाला है । तो खुराक सम्यक् प्रकार का लें।

(७) **सम्यक् स्मृति** : जिस स्मृति से शत्रु के लिए आग पैदा हो और मित्र के लिए आकर्षण पैदा हो, उसे 'हरि ॐ तत् सत् और सब गपशप' कहकर हटा दें। जिस स्मृति से आप-अपनेको दीन-हीन, बीमार, कमजोर या फलाने ने मेरे से बुरा किया ऐसा मानें, उसको महत्त्व न दें । नाक से लम्बा श्वास लें और मुँह से फेंकें, पंजों के बल कूदें, इस प्रकार हीन स्मृति को भगा दें। अगर नहीं भागती है तो दो घूँट पानी पीकर आश्रम से प्रकाशित 'जीवन रसायन' पुस्तक पढ़ें। कोई मर गया तो उसकी स्मृति में आप उसके पीछे मरो मत। 'मंगलमय जीवन-मृत्यु' पुस्तक पढ़ो।

प्रेमी-प्रेमिकाओं की स्मृति करके गाल बिठाओ मत, आँखें उजाड़ो मत, खोपड़ी खाली मत करो। इस प्रकार की स्मृति युवाधन का सत्यानाश कर देगी।

स्मृति ऐसी करें, जिससे आपका स्वास्थ्य बढ़े, मन प्रसन्न हो और बुद्धि में बुद्धिदाता का प्रकाश आये, चरित्र तथा सद्बुद्धि की रक्षा एवं बढ़ोतरी हो।

(८) **सम्यक् समाधि** : विचार, शांति और एकाग्रता का आश्रय लें । मौन रहें, ध्यान करें, *जिससे मन को समाधान मिले।* इससे आपकी बुद्धि करुणा, ज्ञान और मुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता से संपन्न हो जायेगी।

आप महात्मा बुद्ध की इन आठ बातों को अपने जीवन में लायें तो आपके लिए मेरे हृदय में विशेष स्नेह रहेगा। हम सभीको महात्मा बुद्ध के सद्गुणों का आदर करना चाहिए। महात्मा बुद्ध किसीको पीड़ित देखते तो उनकी आँखें भर आतीं। किसीकी पीड़ा देखकर आपका हृदय भी द्रवित हो जाय तो मैं मानूँगा कि आपने बुद्ध को स्नेह किया, उनके विचारों पर कुछ चले।

हम विश्व-मानव को संदेश देना चाहते हैं कि बुद्धि की क्रूरता का रास्ता छोड़कर बुद्ध की करुणा का रास्ता अपना लें। न बम विस्फोट करें, न करवायें, न उसके शिकार बनें । हम तो आतंकवादियों का भी मंगल चाहते हैं। भगवान उनको भी सद्बुद्धि और सूझ-बूझ के धनी बनायें ताकि वे भी अपने कर्मों को देदीप्यमान करें।

अंगुलीमाल ने बुद्ध को देखकर अपनी क्रूरता छोड़ दी और भिक्षुक बन गया। तुम चाहे भिक्षुक न बनो लेकिन बुद्ध की करुणा का, परहित का, परदुःखकातरता का सद्गुण तो अपने जीवन में जरूर लाओ।

आप चाहे किसी धर्म को मानते हो किंतु गहराई में आपके और हमारे अंदर एक ही अल्लाह, एक ही गॉड, एक ही परमात्मा हैं। मानव मानव के हित में लग जाय तो आतंक, शोषण कम हो जायेगा। संसार स्वर्ग हो जायेगा। क्रूरता से दूसरों पर अधिकार जमाने की गलती छोड़कर करुणा से दूसरों के दुःखों को हर लो और दूसरों के सुख को उभारो तो समझो आपने बुद्ध का पूरा आदर किया। (शेष पृष्ठ ३२ पर)

विफलता सफलता की सीढ़ी है

परीक्षा परिणाम घोषित होने के दिनों में आत्महत्याओं का प्रमाण बढ़ जाता है। जिन विद्यार्थियों को परीक्षा में विफलता मिलती है, उनमें से कमजोर मनवाले कई विद्यार्थी घबरा के अथवा चिंता-तनाव से घिर के आत्महत्या तक कर लेते हैं।

वास्तव में विघ्न, विफलता साहस और सफलता की सीढ़ी है। विफलताएँ व कठिनाइयाँ किसके जीवन में नहीं आयीं ? कष्टों ने किसे नहीं झकझोरा ? कठिनाइयाँ सुख-संपत्ति और विकास की जननी हैं । मानव-जीवन में कठिनाइयों की अनिवार्य आवश्यकता है। जिनके जीवन में कठिनाइयाँ नहीं आयीं वे अभागे हैं। विवेकी आदमी का कठिन परिस्थितियों से जितना आंतरिक विकास होता है, उतना आंतरिक विकास सुख-सुविधाओं में रहकर संभव नहीं।

कबीर सुख को जाय था, बिच में मिलि गया दुःख।
सुख जाहू घर आपने, मैं अरु मेरा दुःख।।

ऐसी ऊँची समझवाले संत कबीर, श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज आदि महापुरुषों का जीवन कठिन परिस्थितियों में ही कितना विकसित हुआ ! यदि जीवन में विरोध और कठिनाइयाँ न आयें तो व्यक्ति खोखला रह जायेगा परंतु इन कठिनाइयों व समस्याओं के सिर पर पैर रखकर आगे बढ़ने के लिए जीवन में किसी कुशल मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। जो भी महापुरुष बने हैं वे किसी समर्थ मार्गदर्शक के आश्रय में रहे हैं। भारतवासियों का बड़ा सौभाग्य है कि इन कठिनाइयों से लोहा लेने की युक्तियाँ बतानेवाले आत्मानुभवी संत हमारे देश में अब भी मौजूद हैं और वे हममें जीवन की समस्याओं से जूझने का प्राणबल भी भरते रहते हैं। वे कहते हैं :

जहाजों को डुबा दे, उसे तूफान कहते हैं।
तूफानों से जो टक्कर ले, उसे इन्सान कहते हैं।।
मुस्कराकर गम का जहर, जिनको पीना आ गया।
यह हकीकत है कि जहाँ में, उनको जीना आ गया।।

सौ-सौ चोटें करने, धक्के मारने के बाद भी यदि सफलता का द्वार नहीं खुलता तो शांतचित्त होकर आंतरिक विश्रांति पाओ। विश्रांति से सही प्रेरणा पाकर सही चोट व सफलता अवश्य आयेगी।

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
(ऋग्वेद : १०.५७.४)

उठो, कायर मत बनो, होश सँभालो। सोच-विचार, कर्म-कौशल से जीवन को उन्नत बनाओ।

ये वेद भगवान के वचन आप जैसे सज्जनों के लिए हैं। अगर और अधिक हिम्मत, साहस व कार्यकुशलता की आवश्यकता पड़ती है तो आश्रम से प्रकाशित छोटी-छोटी पुस्तकें 'पुरुषार्थ परमदेव, जीवन रसायन' प्रतिदिन ५-१० मिनट पढ़ो। बार-बार पढ़ो। १०-१५ प्राणायाम करो। सारा वातावरण बदल जायेगा और हिम्मत, साहस व कार्यकुशलता का भंडार आपके लिए खुल जायेगा। जप, प्राणायाम, पुरुषार्थ और भगवद्विश्रांति बंद द्वार खोलने की कुंजी है ।

ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों के अमृतवचनों का लाभ लेकर ही जीवन को सुख-शांति एवं महानता के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है। इसके अलावा कोई सच्चा और स्थायी उपाय नहीं है। भौतिक सुख-सुविधाओं की प्रबल लालसा को लेकर जितना ही मनुष्य असंयमी, असहिष्णु और असंतुष्ट होगा, उतनी ही आत्महत्यारों और उन्माद के रोगियों की संख्या बढ़ेगी।

इसी कारण सबसे अधिक सुख-सुविधा संपन्न देश अमेरिका में आत्महत्यारों, पागलों, हिंसकों की संख्या अधिक है। संतोष के बिना कदापि इसमें कमी नहीं आयेगी और सत्संग के बिना जीवन में संतोष कदापि नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिए सत्संग से अपना विवेक व मनोबल बढ़ाकर विफलता तथा कठिनाइयों के सिर पर पैर रखते हुए नयी उमंग के साथ आंतरिक सुख और बाह्य सफलता के लिए प्रबल प्रयत्न करना चाहिए।

श्रीमद् भगवद्गीता का अमेरिकी युवाओं पर प्रभाव

फ्लोरिडा। विकास के पथ पर तेजी से अग्रसर हो रहे भारत का लोहा दुनिया मान रही है। अमेरिका जैसी महाशक्ति भी भारतीय वैज्ञानिकों, सॉफ्टवेयर इंजीनियरों और अन्य क्षेत्रों में काम कर रहे लोगों की तारीफ कर चुकी है। इसी सूची में एक और नया नाम जुड़ गया है भारतीय अध्यात्म का। भारत के प्राचीन ग्रंथ 'श्रीमद् भगवद्गीता' के आदर्शों पर चलकर अमेरिकी युवा गलत आदतों का त्याग कर रहे हैं।

कुछ दिन पहले फ्लोरिडा यूनिवर्सिटी में छात्रों को 'श्रीमद् भगवद्गीता' के जरिये प्रबंधन के गुर सिखाने का कार्यक्रम शुरू किया गया था। इसमें शामिल हुए छात्र-छात्राएँ इस भारतीय ग्रंथ से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसके आदर्शों को न सिर्फ खुद अपनाया बल्कि उन्हें दुनिया भर में फैलाने का संकल्प भी लिया।

उन्होंने बताया कि तीन सप्ताह के 'श्रीमद् भगवद्गीता' के लेक्चर में हमें इस धर्मग्रंथ ने बहुत प्रभावित किया और हम सभी छात्र-छात्राएँ इसके आदर्शों को दुनिया भर में फैलाना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने एक वेबसाइट भी तैयार कर ली है, जो जल्द ही सबके लिए उपलब्ध हो जायेगी।

एक अन्य छात्र ने बताया कि मैं और मेरे सभी दोस्त पहले प्रत्येक शनिवार, रविवार का दिन मौज-मस्ती, शराब और सिगरेट में बिताते थे लेकिन जबसे श्रीकृष्ण के आदर्श जानने-समझने का मौका मिला, तब से हमारी दिनचर्या बदल गयी है। अब हम छुट्टियों का उपयोग 'श्रीमद् भगवद्गीता' को गहराई से समझने में करते हैं।

यूनिवर्सिटी में हिन्दू धर्म विषय के प्रोफेसर डॉ. अनिरुद्ध लोखड़े बताते हैं कि 'श्रीमद् भगवद्गीता' सचमुच किसी चमत्कार से कम नहीं है। पहले जो छात्र यूनिवर्सिटी में हरदम हुड़दंग मचाते रहते थे, वे अब शालीनता से पेश आते हैं। उनके व्यवहार में गजब का बदलाव देखने को मिल रहा है। 'गीता' में सही राह पर लाने की शक्ति है।

साधकों के लिए

प्रेम और विचार

प्रेम का अधिकारी प्रेमी ही होता है, भोगी नहीं क्योंकि उपभोग से प्रेम में शिथिलता आ जाती है। यदि गंभीरता से विचार किया जाय तो यह समझ में आ जाता है कि जीव और ईश्वर दोनों ही प्रेमी हैं। इनमें से कोई भी भोगी नहीं है। **जीव में जो भोगबुद्धि जाग्रत होती है, वह केवल देह के संबंध से होती है,** स्वाभाविक नहीं है और देह का संबंध अविचारसिद्ध है, यह सभी दर्शनकार मानते हैं। अतः प्रेम के लिए विवेकपूर्वक देह से असंग होकर चाहरहित होना परम आवश्यक है।

ईश्वर और जीव दोनों प्रेमी होते हुए भी दोनों के प्रेम में बड़ा अंतर होता है क्योंकि ईश्वर चाह से रहित और समर्थ भी हैं। जीव चाह से रहित तो है परंतु समर्थ नहीं है। जीव में प्रेम की भूख है इसलिए वह प्रेम करता है और ईश्वर माधुर्यभाव से प्रेरित होकर जीव को प्रेम प्रदान करने के लिए उससे प्रेम करते हैं। ईश्वर सब प्रकार से पूर्ण और सर्वथा असंग हैं, अतः उनमें किसी प्रकार की चाह नहीं होती।

जीव जो भोगों का और उनकी चाह का त्याग करता है, उसमें कोई महत्त्व की बात नहीं है क्योंकि भोगों को भोगने का परिणाम तो रोग है। उससे बचने के लिए उनका त्याग अनिवार्य है। इसके सिवा जीव को जो कुछ वस्तु और कर्मशक्ति प्राप्त है, वह भी ईश्वर की ही दी हुई है। अतः उनका त्याग करना भी कोई बड़ी भारी उदारता नहीं है। इसी प्रकार सद्गति के लालच का त्याग कर देना भी कोई महत्त्व की बात नहीं है क्योंकि सब प्रकार के भोगों की चाह से रहित होने पर दुर्गति तो होती ही नहीं। इतने पर भी जीव की इस ईमानदारी को अर्थात् उसके नाममात्र के त्याग को भी ईश्वर अपने सहज कृपालु स्वभाव से जीव की बड़ी भारी उदारता मानते हैं और जीव पर ऐसा प्रेम करते हैं कि स्वयं पूर्णकाम होने पर भी जीव से प्रेम करने की कामना का अपने में आरोप कर लेते हैं क्योंकि प्रेम ईश्वर का स्वभाव है और जीव की माँग है। अतः जो उनसे प्रेम करता है, ईश्वर अपनेको उसका ऋणी मानते हैं। सचमुच एकमात्र ईश्वर ही प्रेमी हैं क्योंकि प्रेम प्रदान करने का सामर्थ्य अन्य किसीमें नहीं है।

भोगी मनुष्य प्रेम का अधिकारी नहीं होता। वह तो सेवा का अधिकारी है। प्रेम का अधिकारी तो चाह से रहित ही होता है क्योंकि चाहयुक्त व्यक्ति के साथ किया हुआ प्रेम स्थायी नहीं होता। वह उस प्रेम को भी अपनी चाह-पूर्ति का साधन मान लेता है। अतः प्रेम का आदर नहीं कर पाता।

पहले प्रेम और विचार को अंतःकरण की शुद्धि का हेतु बताया गया था क्योंकि विचार से देहाभिमान का त्याग और प्रेम से अपने-आपका समर्पण होने से अपने-आप निर्वासनिकता आ जाती है। सब प्रकार की चाह का अभाव हो जाना ही अंतःकरण की परम शुद्धि है।

जब तक मनुष्य के राग-द्वेष समूल नष्ट नहीं हो जाते, तब तक वह चाह से रहित नहीं हो पाता और जब तक वह अपनी प्रसन्नता का कारण अपने से भिन्न किसी व्यक्ति, वस्तु, अवस्था या परिस्थिति को मानता है, तब तक राग-द्वेष का अंत नहीं होता। इसलिए साधक को चाहिए कि वह अपने विकास का अर्थात् उन्नति या प्रसन्नता का हेतु किसी दूसरे को न माने।

विचार करने पर मालूम होता है कि किसी व्यक्ति, सम्पत्ति या परिस्थिति पर मनुष्य की उन्नति या प्रसन्नता निर्भर नहीं है क्योंकि अज्ञानवश अपनी प्रसन्नता का हेतु समझकर वह जिसका जितना संग्रह करता है, उतना ही पराधीनता के जाल में फँस जाता है। पराधीनता किसीकी प्रसन्नता में हेतु नहीं है, यह प्राणिमात्र का अनुभव है।

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(अंक १७१ से आगे)

प्रह्लादजी की न्यायशीलता

सम्राट प्रह्लाद की भगवद्भक्ति और धर्मपरायणता तो प्रसिद्ध ही है किंतु उनकी न्यायशीलता भी किसी न्यायशील सम्राट से कम नहीं थी। प्रत्युत उनके समान न्यायशील शासक किसी इतिहास में कदाचित् ही कोई मिलेगा। राजा में सत्य की बड़ी भारी आवश्यकता होती है। सत्यहीन शासक का कोई मित्र नहीं होता और सपरिकर सपरिवार उसका सर्वनाश हो जाता है। जिस प्रकार लाठी लेकर चरवाहे अपने पशुओं की रक्षा करते हैं, उस प्रकार किसी पर प्रसन्न होकर देवता लोग उसकी रक्षा नहीं करते बल्कि वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसको सुबुद्धि देते हैं। सुबुद्धि प्राप्त होने पर मनुष्य सच्चरित्र और सत्यवादी होकर अपने धर्म की रक्षा करते हैं एवं वह सुरक्षित धर्म उनकी सब प्रकार से रक्षा करता है। सम्राट प्रह्लाद की न्यायप्रियता के अनेक उदाहरण हैं। उनमें सबसे अधिक महत्त्व का उदाहरण राजकुमार विरोचन और ऋषिकुमार सुधन्वा के प्राणपणवाले झगड़े के न्याय का है।

पांचालदेश में केशिनी नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी। वह कन्या स्वयंवरा थी और उसको पाने के लिए न जाने कितने राजकुमार एवं ऋषिकुमार पागल-से हो रहे थे। स्वयंवर होने की तिथि के पहले ही उसकी सेवा में अपनी-अपनी गुणगरिमा प्रकाशित करने के लिए नित्य ही लोग जाया करते थे। जितने लोग उसके पास पहुँचे थे, उन सबमें से उसका हृदय ऋषिकुमार सुधन्वा की ओर झुका था। एक दिन उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर प्रह्लाद के सुपुत्र राजकुमार विरोचन भी उसके पास जा पहुँचे और उससे अपनेको वरण करने की विनीत याचना की। विरोचन एकछत्र सम्राट के प्यारे पुत्र थे, विद्वान और बुद्धिमान थे। उनमें सभी गुण थे और उनके पिता का सुर-असुर दोनों ही समुदायों में बहुत मान था किंतु विरोचन में एक बहुत बड़ा दोष था और वह था आत्माभिमान। इसी कारण उनके हृदय में देवताओं और ब्राह्मणों के प्रति भक्ति नहीं थी, प्रत्युत द्वेष के भाव थे। वे अपने सामने किसीको भी विद्वान, ज्ञानी और कुलीन नहीं समझते थे। रूपवती केशिनी न तो वर्तमानकाल की-सी स्वेच्छाचारिणी शिक्षिता युवती थी और न अपने कुल, धर्म एवं सदाचार को तिलांजलि देकर ही स्वयंवरा हुई थी। केशिनी विदुषी थी, विवेकसम्पन्ना थी, राजनीतिपटु और बुद्धिमती थी। वह अपने विचारों में दृढ़ और निर्भय थी। उसने राजकुमार विरोचन से कहा : 'हे राजकुमार ! आपमें अन्य सभी योग्यताएँ विद्यमान हैं किंतु आपके कुल की योग्यता के संबंध में मुझे सन्देह है। विवाह के संबंध में जितनी योग्यताएँ बतलायी गयी हैं, उनमें सबसे बड़ी योग्यता कुल की है। अब तक मेरी दृष्टि में मेरे वरने योग्य वर महर्षि अंगिरा के सुपुत्र ऋषिकुमार विद्वान सुधन्वा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। हे राजकुमार ! आप ही बतलायें कि कुल में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या दैत्य ? यदि दैत्य की अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं तो मैं ऋषिकुमार सुधन्वा के साथ विवाह क्यों न करूँ ?'

(क्रमशः)

चल पड़ो अन्तर्यात्रा पर

मंत्रदीक्षा के बाद साधकों को पूज्यश्री का प्रेमपूर्ण आत्मीय उद्बोधन :

तुमको मंत्रदीक्षा दी गयी है। मार्गदर्शक सूचनाएँ भी तुमको मिल गयी हैं। अब तुम्हें अभ्यास की आवश्यकता है। अभ्यास के बिना दीक्षा का पूरा लाभ नहीं हो पाता। अपने निश्चय और अन्तर्दृष्टि को अभ्यास में लगाओ। अब ईश्वर की ओर तीव्र गति से आगे बढ़ने का मार्ग मिल ही गया है तो दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ो। आत्मसाक्षात्कार का दृढ़ संकल्प करनेवाले का रास्ता कौन रोक सकता है ?

ईश्वर के अस्तित्व का गहन अनुभव करने के लिए और सबको भूल जायें यह अत्युत्तम नहीं है क्या ? विकारी आकर्षणों का त्याग करने से प्रकृति स्वयं तुम्हारे समक्ष सत्य सौन्दर्य प्रकट करेगी। इस प्रकार हर चीज तुम्हारे लिए आध्यात्मिक बन जायेगी। घास का एक तिनका भी आत्मा का उपदेश करने लगेगा। तुमको अकेला पाकर ईश्वर तुम्हारा साथी बनेगा, सखा बनेगा, सर्वस्व बनेगा।

परमात्मा कहते हैं : 'जब तुम सब छोड़कर मेरे मार्ग पर चलोगे तो याद रखो, मेरा प्रेम और बुद्धियोग हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगे। **ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।'** (गीता : १०.१०)

तुम जितना आत्मदेव के नजदीक आओगे उतनी अन्तर्दृष्टि अधिक प्राप्त होगी। पूरे अस्तित्व के साथ अपना तादात्म्य महसूस करोगे। आज से तुम अपनेको जीवरूप से मृतक मान लो।

दिल की डायरी में लिखकर रखो कि तुमको कभी-न-कभी कैसे भी करके अपरिच्छिन्न आत्मदेव के आगे अपने परिच्छिन्न व्यक्तित्व का बलिदान देना ही होगा। देहाध्यास को छोड़ना ही पड़ेगा। बुलबुले को सागर में, जीव को ब्रह्म में एकाकार होना ही पड़ेगा। तुम इसके लिए उत्साहपूर्ण होगे तो मार्ग जल्दी तय हो जायेगा, सफलता सहज में प्राप्त हो जायेगी। तुम उत्साहहीन होकर चलोगे तो मार्ग लंबा हो जायेगा।

तुममें यदि उत्सुकता हो, आकांक्षा हो तो समय का उचित उपयोग करो। प्रत्येक प्रसंग का लाभ उठाओ। 'तुम जैसे हो' और 'तुम जैसा होना चाहते हो' इन दोनों के बीच का फासला तुम एक ही छलाँग में पार कर सकते हो। तो जल्दी करो, जैसे शेर अपने शिकार पर कूद पड़ता है, वैसे तुम अपने लक्ष्य पर जम जाओ। अपने मर्त्य शरीर पर दया न करो। तभी तुममें अमर आत्मा का प्रकाश आलोकित हो उठेगा।

दुःखों के प्रति ध्यान मत दो। अनेकविधता का क्या काम है ? जब विश्वात्मा स्वयं प्रकट हो रहा है तब विविधता की चाह क्यों कर रहे हो ? विविधताएँ केवल शारीरिक हैं। उन पर कतई ध्यान न दो। केवल एक अन्तर्यामी से संबंध रखो। अनेक से नाता तोड़ दो।

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।

वैराग्य की शक्ति जुटाओ और चिंता नहीं करो।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः। (गीता : ६.५)

तुम स्वयं ही अपने मित्र हो और तुम ही अपने शत्रु हो। एक ही झटके से पूर्व के संस्कारों के बंधन काट डालो। एक बार दृढ़ निश्चय उदित हो गया तो कार्य सरल बन जायेगा। तुम्हारे चिन्मय वपु (चैतन्यमय शरीर) के निर्माण में और उसके पोषण में परमात्मा की करुणा व आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं। विश्वास रखो। विश्वास में ही कल्याण है। दूसरों की सम्मतियों का क्या काम है ? तुम्हारे लिए मन के सब भाव निरर्थक हैं। (शेष पृष्ठ ३२ पर)

आम्रकल्प : एक मधुर कल्प

नमकीन, चरपरे, तले हुए व चीनी से बने पदार्थों की अधिकतावाला आज का असंतुलित भोजन पाचनशक्ति को बिगाड़ रहा है, साथ ही रक्त में अम्लता बढ़ाकर अनेक रोग पैदा कर रहा है। सारे अप्राकृतिक खाद्यों से पिंड छुड़ा के उपर्युक्त दोषों को दूर कर कायाकल्प करनेवाला प्रयोग है आम्रकल्प (आम का कल्प)। माँ पार्वतीजी का प्रिय यह स्वर्गीय फल भगवान शिवजी ने धरती पर प्रकट किया था।

आम का पका फल वीर्य, बल, जठराग्नि, शुक्र व कफ वर्धक, वातनाशक, मधुर, स्निग्ध, शीतल, हृदय के लिए हितकर, वर्ण निखारनेवाला होता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, क्षार, कैल्शियम, फास्फोरस, लौह एवं विटामिन ए, बी, सी व डी पाये जाते हैं। गाय का दूध अत्यंत स्वादिष्ट, स्निग्ध, मधुर, शीतल, रुचिकर तथा रक्त, बल, वीर्य, स्मृति, बुद्धि व आयुष्य वर्धक एवं रोगनाशक है। आम के प्रोटीन-बाहुल्य व दूध के स्निग्धता-बाहुल्य का सुमेल शरीर के लिए अमृततुल्य प्रभाव दिखाता है।

कल्प के लिए आम : जिस आम में रेशा बहुत कम, गूदा अधिक व जिसका स्वाद खूब मीठा होता है वह उत्तम है। कल्प के लिए उत्तम जाति के पतले रसवाले देशी आम लें, खट्टे आम हानि करते हैं। पतले रसवाले आम न मिलें तो गाढ़े रसवाले आम ले सकते हैं।

प्रयोग-विधि : एक दिन उपवास कर फिर कल्प शुरू करें। उपवास के दिन केवल गुनगुना पानी लें। आमों को ४ घंटे ठण्डे जल में भिगो दें (आम फ्रीज में न रखें), फिर अच्छी तरह धोकर उसके मुँह के ऊपर का हिस्सा अलग करके वहाँ से दो-चार बूँद रस निकाल दें। फिर धीरे-धीरे चूसें। रस को लार में खूब घुला-घुलाकर लेना चाहिए। आम का रस निकालकर उपयोग में लाने पर वह पचने में भारी हो जाता है, अतः चूसकर खाना ही उत्तम है।

कल्प के प्रथम तीन-चार दिन केवल आमरस व पानी पर ही रहें, जिससे आँतों में पुराने मल की सड़न से पैदा हुए कृमियों का नाश हो जायेगा एवं मित्र कृमियों की संख्या बढ़ेगी, फलतः पाचन व निष्कासन क्रिया दुरुस्त होगी एवं यदि वायु होती हो तो वह शांत होगी।

सामान्य पाचनशक्तिवाले व्यक्ति दिन में दो बार आम का रस व दो बार दूध ले सकते हैं। आम उतनी ही मात्रा में लिये जायें कि दुग्धाहार के समय भूख कसकर लगे। शुरुआत में एक बार में २५० मि.ली. दूध पर्याप्त है। आम एवं दूध की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ायें। आम व दूध के सेवन में २-३ घंटे का अंतर रखें तथा सूर्यास्त के बाद आम का सेवन न करें। दूध को चुसकी लेते हुए पीयें, इससे दूध और भी सुपाच्य हो जायेगा।

इस प्रयोग के दौरान अन्य आहार नहीं लेना है। प्यास लगने पर पानी जरूर पीयें। यदि वायु या कफ का जोर दिखायी पड़े तो आम-सेवन से पूर्व सेंधा नमक के साथ अदरक के टुकड़े खायें। इस प्रकार ४० दिन तक केवल आम और दूध पर रहें। कल्प का विशेष लाभ लेना हो तो ४० दिन के बाद एक-दो माह तक दिन में एक बार सुपाच्य भोजन और सुबह आम व रात को दूध का सेवन करें।

(जो २-३ हफ्ते से ज्यादा समय तक कल्प न कर पायें, वे दोपहर को रोटी व मूँग की दाल तथा सुबह आम एवं रात को दूध का सेवन कर सकते हैं।)

लाभ : आम्रकल्प से पाचनक्रिया शुद्ध होकर पुराने कब्ज, मंदाग्नि, अम्लपित्त, संग्रहणी, अरुचि, क्षय, यकृतवृद्धि, स्नायु व धातु दौर्बल्य, वायु, अनिद्रा, रक्तचाप की कमी या अधिकता तथा हृदय रोग में बहुत लाभ पहुँचता है।

आम का विटामिन ए बाहर के विषों से शरीर की रक्षा करता है व विटामिन सी चर्मरोगों को खत्म करता है। इस कल्प से रक्त, वीर्य, बल व कांति की वृद्धि होती है।

स्वास्थ्य व स्वादप्रद अमावट (अमरस) : पके आम के रस को निकाल के कपड़े पर पसारकर धूप में सुखायें। जब सूख जाय तब उसी पर पुनः रस डालें व सुखायें। इससे जो मोटी परत तैयार होती है उसीको 'अमावट' कहते हैं। यह प्यास, वमन, वात व पित्त का नाशक, सारक, रोचक तथा सुपाच्य होता है।

नीम से वातरोग से मुक्ति

मैं श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर में पुजारी हूँ। कुछ समय पूर्व मैं वातरोग से बहुत पीड़ित था। मेरे दायें कुल्हे से दायें पंजे तक चमक और दर्द रहता था। छः माह इलाज कराया पर कोई लाभ नहीं हुआ। असहनीय दर्द के मारे मैं न बैठ पाता था, न खड़ा रह पाता था और न लेट ही पाता था। भगवान श्रीहरि की कृपा से मन्दिर में एक बुजुर्ग आते थे, आयु लगभग ९० वर्ष रही होगी। उन बुजुर्ग ने मुझसे कहा कि 'पुजारीजी ! दवाओं से वातरोग में कम आराम मिलता है। अगर आप हमारी बात मानें तो आप नीम की नयी पत्ती (जो आषाढ़ से आश्विन मास तक आती हैं) डेढ़ तोला सुबह खाली पेट चबाकर खायें और रात को सोते समय ५० ग्राम गुड़ तथा १ तोला शुद्ध घी का सेवन करें। पानी तुरंत न पीयें। आपको पंद्रह दिन में वातरोग से आराम मिल जायेगा।' मैं तो सब ओर से निराश हो ही चुका था। अतः मैंने उन बुजुर्ग सज्जन की बात को मानना ही उचित समझा। संयोग से उस समय आषाढ़ का महीना था। नीम में नयी पत्तियाँ निकल रही थीं। मैंने नित्य खाली पेट नीम की डेढ़ तोला पत्तियाँ खानी शुरू की और रात्रि में सोते समय ५० ग्राम गुड़ एवं १ तोला शुद्ध घी खाने लगा। श्रीहरि की कृपा से कुछ ही दिनों में वातरोग से मुझे मुक्ति मिल गयी।

- श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर, झाँसी (उ.प्र.)।

'ईश्वर की ओर' ने बदली मेरी जीवन दिशा

पूज्य बापूजी,

हरि ॐ और सादर प्रणाम।

मैं और मेरे बहुत सारे मित्रों को आपकी 'ईश्वर की ओर' पुस्तक बहुत पसन्द है। मैं यहाँ पर 'डॉन बॉस्को स्कूल' (कान्वेंट स्कूल) का वाइस प्रिंसीपल था तथा सोलह-सत्रह साल पहले धर्म या भगवान में बिल्कुल रुचि नहीं रखता था, बिल्कुल नास्तिक था और टेंशन, चिंताओं आदि से घिरा रहता था। लेकिन एक बार 'ईश्वर की ओर' मेरे हाथ में आयी और उसे पढ़ते ही एक अलौकिक शांति का अनुभव हुआ। उसमें आपने जो मृत्यु के बाद की स्थिति, समता का और वैराग्य का उपदेश दिया है उसकी किसी और पुस्तक में मिसाल ही नहीं है। यह पुस्तक बड़े-से-बड़े नास्तिक आदमी के दुःख-दर्द को भुलाकर उसे आस्तिक बना सकती है। यहाँ के उच्च शिक्षित वर्ग (highly educated class) में यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय है।

आपकी पुस्तक ही सबसे बड़ा माध्यम है, जो कहीं भी, किसी भी आदमी तक जा सकती है और कोई भी आदमी उसे पढ़कर लाभ ले लकता है। बड़े-से-बड़े ऑफिसर, डॉक्टर भी आपकी 'ईश्वर की ओर', 'आत्मयोग', 'समता साम्राज्य' जैसी पुस्तकों से अपने भरपूर टेंशनवाले जीवन में शांति, समता का अनुभव कर सकते हैं। अतः इतनी ऊँची और सस्ती इन सभी पुस्तकों का सभी लोग फायदा उठायें- ऐसा सभी शिष्यों और हमारे जैसे पाठकों को प्रयत्न करना चाहिए। **- सिद्धार्थ, मुंबई (महा.)।**

योगामृत

गोमुखासन

इस आसन में शरीर का आकार गाय के मुख जैसा हो जाता है, अतः इसे 'गोमुखासन' कहते हैं।

विधि : जमीन पर बैठ जायें। बायें पाँव को आगे से मोड़कर पीछे की तरफ इस प्रकार लायें कि एड़ी का हिस्सा गुदा पर लग जाय या दायें नितम्ब की बगल में सटा रहे। फिर दायें पैर को आगे से मोड़कर उसकी एड़ी बायें नितम्ब की बगल में सटा दें। पैरों के पंजे सीधे होकर जमीन से लगे रहें तथा घुटने एक-दूसरे से सटे रहें। तत्पश्चात् दायें हाथ को गले की बगल से कंधे के पीछे अर्थात् पीठ की ओर से ले जाकर व बायें हाथ को बायीं ओर उलटकर बायीं बगल के नीचे से होकर पीठ की तरफ से इतना गर्दन की तरफ लायें कि दोनों हाथों की आठों उँगलियाँ आपस में फँस जायें। फिर कमर के ऊपरी भाग को सीधा रखते हुए स्थित रहें। इसमें आँखें खुली हुई हों और श्वास साधारण चलना चाहिए। फिर इस क्रिया को हाथ व पैरों को बदलकर करना चाहिए।

लाभ :

(१) इस आसन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि फेफड़ों से संबंधित बीमारियों के लिए यह बहुत उपयोगी माना गया है। दमा व क्षय रोगियों को यह आसन अवश्य करना चाहिए क्योंकि इसमें एक तरफ से आसन करने पर एक फेफड़े का श्वास अवरुद्ध हो जाता है और दूसरा फेफड़ा तीव्र वेग से चलने लगता है। इसी तरह दूसरी तरफ से करने पर पहलेवाला फेफड़ा अत्यधिक काम करने लगता है। इस प्रकार यह आसन फेफड़ों की सफाई व उनमें रक्तसंचार का कार्य सुचारु रूप से करता है। (२) एक श्वास में जितनी प्राणवायु की आवश्यकता होती है, इस आसन में व्यक्ति उससे कहीं अधिक मात्रा में ले लेता है। इससे फेफड़ों के छिंद्र शीघ्र ही साफ हो जाते हैं। इसलिए ऋषियों ने यह आसन प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी बताया है। (३) पाँव, भुजाएँ, कंधे, घुटने, कमर आदि को बल मिलता है। (४) शरीर के जोड़ लचीले बनते हैं तथा हड्डियाँ मजबूत बनती हैं। (५) स्नायुओं की दुर्बलता व संधिवात दूर होता है। (६) मूलबंध स्वाभाविक लगने से यह प्राणायाम-अभ्यास के लिए बहुत ही उपयोगी है। (७) लम्बे समय तक ध्यानस्थ होने के लिए भी यह उपयोगी है। (८) पीठ व सायटिका का दर्द भी दूर होता है। (९) अण्डकोषवृद्धि (हाइड्रोसिल), गुर्दे के रोग, मधुमेह आदि रोगों में लाभ होता है। (१०) वीर्य पुष्ट होने से यह ब्रह्मचर्य तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए सहायभूत है।

'ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि

२ अप्रैल-चैत्री पूर्णिमा को प्रातः पूज्यश्री का दर्शन-सत्संग अमदावाद आश्रम में और दोपहर को रजोकरी आश्रम (दिल्ली) में हुआ । श्री हनुमान जयंती व चैत्री पूर्णिमा के युगल पर्व पर पूज्यश्री ने जीवन में व्रत एवं दृढ़ निश्चय की महिमा पर प्रकाश डाला ।

९ अप्रैल को पूज्यश्री के ६७वें अवतरण-दिवस के शुभ अवसर पर श्री सुरेशानंदजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में भव्य शोभायात्रा निकाली गयी । मधुबन चौक, रोहिणी से प्रारंभ हुई यह विशाल शोभायात्रा प्रीतमपुरा, शालीमार बाग, अशोक विहार, शास्त्रीनगर, देवनगर में हरिनाम संकीर्तन से अध्यात्म की छटा बिखेरती रिंग रोड पर स्थित दिल्ली आश्रम में संपन्न हुई । दो-ढाई किलोमीटर लंबी भिन्न-भिन्न रूपों में सजी-धजी झाँकियों से युक्त शोभायात्रा का विभिन्न मार्गों पर विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा आरती व पुष्पवर्षा से स्वागत किया गया ।

इस शुभ अवसर पर चण्डीगढ़ आश्रम में पूज्यश्री की पावन उपस्थिति रही । जन्मोत्सव मनाने आये श्रद्धालुओं के लिए पूज्यश्री ने मानव-जीवन का फल-आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति पर जोर दिया और इसके लिए मौन, जप तथा एकान्त की आवश्यकता पर प्रकाश डाला ।

देश के विभिन्न भागों में स्थित आश्रमों व समितियों द्वारा पूज्यश्री के अवतरण-दिवस पर सेवाकार्य एवं भंडारों का आयोजन किया गया । जगह-जगह भव्य संकीर्तन यात्राएँ, गरीबों में अन्न, मिठाई, दक्षिणा वितरण, अस्पतालों में फल-वितरण, विद्यार्थियों में नोटबुक व 'युवाधन सुरक्षा' पुस्तक-वितरण आदि लोक कल्याणकारी सत्प्रवृत्तियों से अवतरण-दिवस मनाया गया ।

(पृष्ठ २३ का शेष)

मति को उज्ज्वल करनेवाले ये आठ उपाय हैं। इन्हें मनुष्य अपने जीवन में धारण करें तो क्रूरता की जगह पर करुणामयी बुद्धि हो जायेगी। करुणामयी मति होते ही करुणा-वरुणालय भगवान का रस, ज्ञान और प्रकाश उभरने लगेगा।

बुद्ध का करुणावाला स्वभाव अपने जीवन में लाने का संकल्प कर लो बस... हो गया भगवान बुद्ध का आदर, हो गयी उनकी बढ़िया पूजा। **ॐ ॐ सत्यं शरणं गच्छामि... ॐ ॐ बुद्धं शरणं गच्छामि...**

बुद्ध की मूर्ति के पैर पकड़ने को नहीं कह रहे हैं। 'बोध' माना 'ज्ञान' - ज्ञान की शरण जाओ, समता की शरण जाओ। ॐ... ॐ... सबका मंगल, सबका हित, सबकी प्रसन्नता, सबकी सुरक्षा... ॐ ॐ शांति, ॐ ॐ माधुर्य...

(पृष्ठ २८ का शेष)

याद रखो, जब तक तुम अन्य लोगों से मानप्राप्ति की अपेक्षा रखते हो, तब तक समझ लो कि मिथ्याभिमान ने तुम्हारे भीतर अड्डा जमाया है । अपनी दृष्टि में ही पवित्र बनो। और लोग क्या कहते हैं इसकी तनिक भी परवाह मत करो। व्यर्थ बातों में समय व्यतीत मत करो।

सब प्रकार से अपना आत्मआश्रय लो। मार्गदर्शन के लिए अपने भीतर ही अंतर्यामी परमात्मा की ओर दृष्टि डालो। अपने अभ्यास की प्रामाणिकता तुमको दृढ़ बना देगी। यह दृढ़ता तुमको लक्ष्य तक पहुँचा देगी । तुम्हारी सच्चाई तुमको निश्चयी बनायेगी। तुम्हारा निश्चय तुमको सब भयों से मुक्त करेगा । तुमको परमात्मा के आशीर्वाद... सदा-सदा के लिए आशीर्वाद...

हुई । दो-ढाई
में सजी-धजी
भिन्न मार्गों पर
संस्थाओं द्वारा
गया ।
गढ आश्रम में
। जन्मोत्सव
श्री ने मानव-
की प्राप्ति पर
प तथा एकान्त

त आश्रमों व
ण-दिवस पर
किया गया ।
रीबों में अन्न,
लों में फल-
वाधन सुरक्षा'
कल्याणकारी
या गया ।

न्य लोगों से
तक समझ लो
ड्डा जमाया है ।
ोग क्या कहते
। व्यर्थ बातों

आश्रय लो ।
ही अंतर्यामी
अभ्यास की
दृढ़ता तुमको
च्चाई तुमको
मको सब भयों
आशीर्वाद...

पूज्य बापूजी के अवतरण दिवस पर निकाली संकीर्तन यात्राओं की कुछ झाँकियाँ

कोटा (राज.)　　　　लखनऊ (उ.प्र.)

मुंबई (महा.)　　　　जलगाँव (महा.)

सागवाड़ा जि. डुंगरपुर (राज.)　　　　रायपुर (छ.ग.)

बोटाद जि. भावनगर (गुज.)

वाराणसी (उ.प्र.)